अक्षरों का आरम्भ
और
भाषा विज्ञान

अक्षरों का आरम्भ और भाषा-विज्ञान

लेखक
आगा हैदर हुसैन
एम० आर० ए० एस० (लन्दन)
भूतपूर्व सिविल व असिस्टेण्ट सेशन्स जज, रियासत चरखारी

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना मद्रास

भूमिका

देखने में यह आता है कि आजकल साधारण तौर से लोगो की मनो-भावना किस्से-कहानियो की ओर बहुत रहती है। उनमें अधिकतर तो चरित्र और प्रकृति को खराब करने वाले होते है। अच्छा साहित्य बहुत कम दिखाई देता है। इस भावना को देखकर विद्वान् मनुष्यो ने भी अपनी कलम की बाग लोगो की थोडी देर की दिलचस्पी के लिए कहानियाँ लिखने की ओर मोड दी। ऐसा साहित्य देश और जाति के लिए लाभ के बजाय हानि पहुँचाने वाला साबित हो रहा है और अधिक-से-अधिक विद्वानो के दिमाग, जो उप-योगी और ठोस साहित्य के लिए काम मे लाये जा सकते हैं, अनुचित रूप से काम मे लाये जा रहे हैं। हजारो की सख्या मे जो कहानियाँ आजकल देश मे प्रकाशित हो रही है, एक बार पढने के बाद उनकी आखिरी मजिल या तो कबाडी की दुकान होती है, या रद्दी मे बेच दी जाती हैं, क्योकि थोडी देर की मन-भावना बीतने के बाद फिर उनमे कोई ठोस तत्त्व ऐसा नही रह जाता जो अलमारी की सजावट के लिए जीवित रखा जाय। अलमारी की सजावट तो ऐसे साहित्य से होती है, जिसको आप निकालकर कभी-कभी उससे अपनी जानकारी मे कुछ बढोतरी करते रहे। अगर हाल के विद्वान् किस्से-कहानियो को छोडकर इतिहास, शोध और अन्य उपयोगी साहित्य के उत्थान की ओर ध्यान दे तो देश और जाति की बडी सेवा हो और हिन्दुस्तानी विद्याओ का बहुत-कुछ प्रचार हो जाय। देश मे ठोस काम करने वाले भी है, और हर प्रकार से उपयोगी साहित्य के प्रकाशन मे अधिक उद्योग भी कर रहे हैं। इन्ही-के कन्धे-से-कन्धा मिलाकर और इन्हीके पथ-प्रदर्शन में हम अपने साहित्य के रास्ते को आसानी से बदल सकते हैं, और सही मानो मे विद्वान् कहला सकते हैं।

इस पुस्तक का प्रकाशन मेरे योग्य, प्रेमी मित्र डॉक्टर सिद्धेश्वर वर्मा, एम० ए०, शास्त्री, डी० लिट्०, रिटायर्ड प्रोफेसर सस्कृत, प्रिंस आफ वेल्स कालेज, जम्मू (काश्मीर) की सहायता और हिम्मत बढाने के कारण हो सका है।

मैं बहुत दिन से यह विचार कर रहा था कि वर्णमाला के इन भिन्न-

भिन्न रूपो के कीडे-मकोडो की—जो हम बनाते हैं—कैसे कल्पना हुई ? किसने की ? इनमे भिन्न-भिन्न अर्थ कैसे लगाये गए ? और हम अपने गले, जीभ और ओठ से जो सुन्दर-सुन्दर आवाजे निकालते है, किस सिद्धान्त पर हैं ? इत्यादि। बडे-बडे ज्ञानी और विद्वानो से खोज करने और भारी सख्या मे वर्णमाला पर पुस्तके पढने के बाद यह बात मालूम हुई कि यह विद्या जितनी फैली हुई है उतनी ही गहराई भी लिये हुए है। मगर फिर भी, बराबर खोज जारी रखी और 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' के असूल पर, अन्त मे यह नतीजा निकला कि अन्धकार के बहुत-से परदे उठ गए। अब हमारे पढने वाले इस पुस्तक को पढे और अपनी जबान से निकलने वाले अक्षरो का इतिहास, व्याख्या और वर्णन जानकर प्रसन्न हो।

इस किताब का आरम्भ 'धरती' और 'मनुष्य' से किया गया है। मुमकिन है, हमारे आदरणीय पढने वालो का यह विचार हो कि वर्णमाला विद्या से जमीन और इन्सान का कोई विशेष सम्बन्ध नही है। इसीलिए इन विषयो से शुरू करना मुझे अच्छा लगा। मेरा विचार ऐसा है कि वास्तव मे 'धरती' और 'मनुष्य' को वर्णमाला की भूमिका कहना चाहिए, क्योकि जबान और अक्षर का वर्णन करने से पहले उसके बोलने वाले की दशा, और बोलने वाले की दशा बताने से पहले उसके रहने का स्थान, भूगोल और मुल्की दशा का थोडा बयान करना अधिक जरूरी था, जिससे साथ-साथ यह भी मालूम होता जाय कि पृथ्वी पर बसने वाले लोग—जिन्होने बडी बुद्धिमानी से वर्णमाला की कल्पना की है—पहले-पहल कब और किस प्रकार पैदा हुए ? क्या उनका रूप था और क्या उनके काम-काज थे ? उनके द्वारा धीरे-धीरे बोली की स्थिति कहाँ-कहाँ और किस-किस तरह अस्तित्व मे आई ? बोलने वालो को इस सम्बन्ध मे कितनी कठिनाइयो का सामना करना पडा, और उनमे क्योकर उन्नति हुई ? इसका हाल पढने के बाद असली विषय पढना अधिक आकर्षक मालूम होगा।

विषय-सूची

दूसरा भाग

पहला भाग

१

पृथ्वी

जमीन वह खजाना या गोदाम है जिससे सारा धन निकलता है; जो सब पशुओं और उगने वाली चीजों के लिए भोजन पहुँचाता है; जिसमें से मनुष्य के लिए अन्न, वस्त्र, जवाहरात, कोयला तथा धातुएँ इत्यादि निकलती है। जीवन के लिए जिन चीजों की आवश्यकता है, वे सब जमीन से निकलती हैं।

जमीन पर रहने वालों का इतिहास उस समय से शुरू होता है जब से मनुष्य जातियो में बँटने लगा। पहले-पहल मनुष्य जंगली फल या शिकार पर बसर करते थे। उस समय आबादी कम थी और जमीन ज़्यादा। जीवन के लिए अधिक चीजों की आवश्यकता नहीं थी। हर जाति अपने क्षेत्र को दूसरी जातियां से बचाती थी।

हकीम बतलीमूस का—जो ईसा के जन्म से १५० साल पहले हुए थे—विचार है कि जमीन कोई घूमने वाला नहीं, बल्कि स्थिर ग्रह है। दूसरे ग्रह उसके चारों ओर हैं और जमीन के तीन ओर पानी है तथा एक ओर स्थल। पृथ्वी के चारों

ओर हवा है। हवा के चारों ओर अंधेरा है और उसके चारों ओर वह आकाश है जिसमें, सिवाय चन्द्रमा के, और कुछ नहीं है। जमीन का घेरा, चारों ओर से, २५,००० मील है। इसकी चौड़ाई ७,६२७ मील और लम्बाई ७,६०० मील है। जमीन ऊपर-नीचे से चपटी होने के कारण २७ मील कम हो गई है। प्राचीन विद्वान् लोगों की राय जमीन के विषय में बहुत विचित्र थी। वे कहते थे कि जमीन खम्भों पर ठहरी है, जैसे छत। कुछ लोगों का खयाल था कि जमीन मूली-गाजर की तरह नुकीली है। इसकी चोटी ऊपर है, जड़ नीचे, और सबसे नीचे कोई सीमा नहीं है। हरक्ल्यूटास कहता है कि जमीन नाव की तरह है, मगर न्यूटन का सिद्धान्त है कि जमीन गोल है।

सबसे पहले, बहुत पहले, जमीन बहुत गरम थी—इतनी गरम, जैसे आग का अंगारा। उससे पहले असीम गरमी के कारण सफेद थी, क्योंकि कोई भी चीज अधिक गरम हो जाने के कारण सफेद हो जाती है। उससे पहले जमीन पिघली हुई आग की तरह थी, और उससे पहले का हाल नहीं मालूम। ज्योतिषी यह मानते हैं कि जमीन बिना किसी सहारे के ठहरी हुई है और उसका कोई खम्भा नहीं है। कुछ का यह भी खयाल था कि जमीन, मछली या बैल के सींग पर है। मगर इसका केवल इतना ही अर्थ था कि यह वास्तव में बैल के सींग पर नहीं रखी हुई है, बल्कि सींग की सूरत पर है यानी इस शक्ल की—

जमीन की शक्ल ऐसी है कि ऊपर-नीचे चपटी और इधर-

उधर से उभरी हुई। जमीन के वजन का प्रश्न बहुत गम्भीर है। जमीन के अन्दर के हालात बहुत कम मालूम हैं। जो कुछ मालूम भी हैं, वे इतने कम हैं कि नामालूम होने के बराबर ही हैं। कुछ नहीं मालूम कि हमारे पैरों के नीचे थोड़े मील की गहराई पर क्या हाल है। फिर भी जमीन के वजन का अन्दाजा लगाया गया है। न्यूटन का खयाल था कि जमीन का वजन शायद पानी के वजन से तीन गुने से ज़्यादा और सात गुने से कम है।

जमीन की उम्र के लिए भी ज्योतिषियों की राय अलग-अलग थी, मगर अब तक कोई पक्का सिद्धान्त स्थापित नहीं हो सका। फिर भी, अब तक, जो कुछ खोज से पता चला, उससे मालूम होता है कि जमीन की उम्र एक अरब साल की है। आर्कबिशप जेम्स अशर धरती माता की उम्र के सम्बन्ध में लिखते हैं कि जमीन २८ अक्तूबर को शुक्रवार के दिन सन् ४००४ ई० पू० सत्ता में आई और रेवरेण्ड जॉन लाईटफुट ने, जो सन् १६५५ ई० में कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी, लन्दन के वाइसचान्सलर थे, यहाँ तक हिसाब लगाया है कि जमीन ६ बजे दिन को उत्पन्न हुई। लॉर्ड केल्विन का विचार है कि चार करोड़ साल में जमीन पिघली हुई हालत को छोड़कर ठण्डी हो सकी है।

जमीन के बारे में हमको कुछ ज़्यादा नहीं कहना, क्योंकि उसकी नदियाँ, उसके पहाड़, समुद्र और जंगल वगैरह के हालात भूगोल और खनिज विद्या जानने वालों से सम्बन्ध रखते हैं।

जमीन का यह थोड़ा हाल मालूम करने के बाद अब हम अपने पूर्वजों की दशा आसानी से जान सकते हैं।

२

मनुष्य

ईश्वर की पैदा की हुई चीजों में सबसे अधिक सुन्दर मानव है। मानव-विज्ञान में बहुत-से खण्ड हैं जो अपने-अपने स्थान पर अलग-अलग ज्ञान के भण्डार हैं। कोई शरीर और इसकी बनावट से सम्बन्ध रखता है तो किसी का सम्बन्ध बुद्धि से है। किसी में भाषा के ही तत्त्व हैं जो एक जाति से दूसरी जाति के साथ सम्बन्ध रखते हैं। एक ओर वह सामाजिक दरजा भी है जिससे सब विद्याएँ सम्बन्धित हैं। मगर हमको यह देखना है कि जिस समय मानव, सबसे पहले, धरती पर दिखाई पड़ा, उसके शरीर, दिमाग और जीवन की क्या दशा थी। डॉ० प्रिचर्ड अपनी पुस्तक 'नैचुरल हिस्ट्री ऑफ मैन' में लिखते हैं कि वर्तमान मनुष्य की तुलना जब हम प्राचीन युग के मनुष्य से करते हैं तो शरीर की बनावट में, उसे बहुत-कुछ जानवरों से मिलुता-जुलता पाते हैं।

मनुष्य, जिसको हम बहुत ऊँचा कहते हैं, केवल उन्हीं चीजों और तत्त्वों से बना है जिनसे वे जातियाँ बनाई गई हैं जिनको मनुष्य अपने काबू में कर लेता है और अपने खाने-

पीने के लिए मार भी डालता है। यह बात मान ली गई है कि ऊँचे दरजे के बन्दर और वनमानुस मनुष्य से शरीर की बनावट में बहुत मिलते-जुलते हैं। मगर मनुष्य ऊँची बुद्धि रखने के कारण दूसरे जानवर से ऊँचा है। प्राणि-शास्त्र का ज्ञान रखने वाले सभी विद्वान् मनुष्य और जानवर को अपने भावों और चेतनाओं को आवाज द्वारा जाहिर करने के नाते एक-जैसा समझते हैं; जैसे तोता-मैना के बोलने की शक्ति करीब-करीब मनुष्य के बोलने की शक्ति से मिलती-जुलती है। अक्सर, जानवर भी मनुष्य की बातें समझते हैं।

पृथ्वी के धरातल पर प्राचीन युग से प्राणियों के जन्म की एक कड़ी बराबर चली आ रही है। यह जाति मनुष्य से बहुत अधिक मिलती-जुलती है। पर इस समानता का अर्थ वंश की समानता नहीं समझना चाहिए। विधाता का मतलब तो पृथ्वी को और एक के बाद दूसरी परिस्थितियों से गुजरते हुए विभिन्न जानवरों को बनाकर अन्त में इस पृथ्वी पर मनुष्य को बनाना था।

वैसान का लड़का मरकियून, जोरास्ट्रियन जुरदिस्त की तरह अपने को धर्म बनाने वाला कहता था। उसका धर्म यह था कि प्रकाश और अन्धकार अत्यन्त पुराने हैं और ये अपने-आप पैदा हो गए हैं। इन्हीं दो चीजों से सारा संसार पैदा हुआ है। उसका विचार था कि ईश्वर ने संसार को पैदा नहीं किया है, क्योंकि संसार में बुराइयाँ अधिक हैं; और बुराइयों का पैदा करने वाला ईश्वर नहीं हो सकता, क्योंकि वह बुराइयों से परे है।

मनुष्य के प्राचीन होने की बहस बहुत लम्बी है। विद्वानों

का विचार है कि जमीन पर मनुष्य का सबसे पहले दिखाई देने का समय इतिहास के अनुसार निश्चित किया जा सकता है।

आर्कबिशप अशर के विचार के आधार पर हमको यह पता चलता है कि जमीन और इन्सान ४००४ ई० पू० में पैदा हुए हैं। भूगर्भ-विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि हमारी धरती बहुत समय पहले से जानवरों और पेड़-पौधों का स्थान बनी रही। इन्सान का पहले-पहल दिखाई देना इतना पुराना है कि एक लाख वर्ष का अन्दाजा भी कम है। पिछली आधी शताब्दी में यह बात मानी जा चुकी है कि इन्सानी हड्डियों और इन्सान की बनाई चीजों के अनुसार मनुष्य की पहली सृष्टि बहुत पुरानी है। इसका एक प्रमाण यह है कि जब नील नदी की घाटी को खोदा गया तो साठ फुट की गहराई में पकी हुई ईंटों के टुकड़े और टूटे हुए बरतन पाये गए। इससे साबित होता है कि जो लोग उस समय दस्तकारी में काफी होशियार थे वे उस घाटी में इतने दिन से आबाद थे, जितने दिन नील नदी के साठ फुट गहरे गड्ढों को भरने के लिए कुछ इन्च प्रति शताब्दी के हिसाब से आवश्यक होते हैं। किन्तु आम तौर पर ५००० साल पहले का अन्दाजा लगाया जा सकता है कि उस समय इन्सान पहली बार पृथ्वी के धरातल पर दिखाई दिया होगा।

कुछ इतिहासकारों का विचार है कि इस दुनिया की आयु दो करोड़ साल की है। अन्य खोजों के अनुसार वह दस लाख साल होती है। लेकिन भूगर्भ-विज्ञान के विद्वान् दस हजार साल से कम इसकी उम्र नहीं बतलाते। ज़्यादा ठीक और सही

अनुमान तूफ़ान नूह के बाद समझना चाहिए, जिसको ५००० साल हुए हैं। नूह के तूफ़ान का अधिक सही इतिहास सेप्च्वजिंट के आधार पर—यानी तोरेत की किताब के यूनानी अनुवाद के आधार पर—समझना चाहिए, जिसके बहत्तर अनुवाद हुए हैं। यह तिथि ३२४६ ई० पू० है, अर्थात् इस समय से नूह के तूफ़ान को ५१६२ साल बीते हैं और इतना ही समय दुनिया की सभ्यता का समझना चाहिए, क्योंकि तूफ़ान-नूह के बाद ही उन्नति दबी है।

सर ई० रे लैंकेस्टर कहते हैं कि चेतन पदार्थ एक स्थिति से दूसरी स्थिति में होते हुए जड़ पदार्थ से ही पैदा हुए। अरस्तू का विचार है कि चेतन पदार्थ अपने-आप पैदा हो गया, मगर पेश्चर ने यह साबित कर दिया है कि कोई द्रव्य, बिना किसी मौजूदा चीज की सहायता के, सत्ता में नहीं आ सकता।

वैज्ञानिकों ने आदि-मनुष्य का नाम, जिसने कुछ निशान छोड़े हैं, पिथेकैंथ्रापस रखा है जो जावा के बन्दर से मिलता-जुलता है। डारविन का विचार है कि जानवर से तरक्की करके मनुष्य वर्तमान शक्ल में दिखाई देता है। इस विचार की पुष्टि प्रोफेसर होतनी की इस खोज से होती है कि आर्य-जाति के मूल धर्म-ग्रन्थ 'यजुर्वेद' में ऐसा लिखा है कि बहुत पुराने युग में एक पशु पाया जाता था, जिसको 'मायु' कहते थे। यह जानवर बिलकुल मनुष्य से मिलता था, किन्तु उसमें बोलने की शक्ति नहीं थी। यूनानी 'दियोमाला' में ऐसा लिखा है कि ऑटचथोन्स पहले मनुष्य थे, जो दुनिया में पैदा हुए, और वे पेड़, चट्टान या कीचड़

से पैदा हुए थे। मगर यह प्रश्न कि ऐसा मनुष्य कब पैदा हुआ था और वह वास्तव मे मनुष्य की सूरत-शक्ल रखता था, ऐसा कठिन है कि उसका कोई विशेष उत्तर नहीं मिल सकता।

पहले-पहल दुश्मनो से बचने के लिए लोग किनारे से हटकर नदियों में पानी के ऊपर झोंपड़े बनाकर रहते थे। 'हीरोगलीफी' शिला-लेखों से—जो दुनिया के बहुत पुराने लेख के नमूने हैं—यह पता चलता है कि दुनिया ३,००० ई० पू० से भी पहले बनी थी। उस समय अधिक जंगली होने के बावजूद भी, उन लोगों की बोली और आवाज के सारभूत तत्त्व वही थे जो किसी सभ्य बोली के होते हैं। अन्तर केवल बारीकी और सफाई में था। उनके द्वारा हथियार, औजार और रोज-रोज की जरूरी चीजे, जैसे हथौड़ा, बसूला, बरछी, चाकू, हाथ से बटा हुआ धागा और जाल इत्यादि, उस समय भी उपयोग में लाए जाते थे। अन्तर सिर्फ उनकी भौंडी बनावट और सूरत मे था। मॉस का भूनना, उबालना, चमड़ा पकाना, चटाइयों का बनाना, जानवरों और मछलियो का शिकार खेलना, जेवरों का पहनना और झोंपड़ो को फूल-पत्ती से सजाना, यह सब वे भी इसी तरह करते थे जैसे हम करते हैं। अन्तर केवल हमारी और उनकी चीजों में अच्छाई और सफाई का था। धीरे-धीरे, बहुत समय बीतने के बाद, खेती-बाड़ी और बरतन-भॉडे बनाने की कारीगरी मालूम हुई; और अन्त में, आवश्यकता होने पर स्थिति और दशा, विचार और मनोभाव को संग्रहीत करने के लिए लेखन-कला की कल्पना हुई, लेकिन सबसे पहले केवल चित्र ही लिखे जाते थे।

मनुष्य उस समय तक सुखी रहता है जब तक उसके

शरीर की इच्छाएँ पूरी होती रहती हैं। लेकिन जब उसकी भूख-प्यास के सामान के मिलने में कठिनाइयाँ होती हैं, उस समय वह भयानक जानवर की तरह हो जाता है। ऐसी चार स्थितियाँ हैं जिनसे जातियाँ गुजरती हैं या गुजर चुकी हैं। शिकार, पशु-पालन, खेती-बाड़ी व व्यवसाय, ये सब काम खुराक मिलने में सहायता देते हैं। इसके लिए कुछ लोग चारों ओर चक्कर लगाते रहते थे और हड्डियों, दाँतों और चकमक पत्थर की खोज करते रहते थे। जैसे हथियार उनके हाथ लगते थे उसी प्रकार का वे काम करने लगते थे, और उसी प्रकार के काम करने वाले हो जाते थे। फ्रैंकलिन ने मनुष्य की प्रशंसा इस प्रकार की है—मनुष्य हथियार बनाने वाला जानवर है। ये हथियार और औजार खाने के पदार्थ प्राप्त करने के काम में आते हैं। जिनके अच्छे हथियार होते थे, उतनी ही आसानी से उन्हें बराबर भोजन मिलता रहता था और ज्यों-ज्यों खाने की चीजें बदलती थीं, उसीके अनुसार हथियारों को भी बदलना पड़ता था। सबसे पहले लकड़ियों और पत्थरों का उपयोग होता था। उसके बाद साफ किये हुए पत्थर का, और उसके बाद पीतल और अन्त में लोहे का प्रयोग हुआ।

संक्षेप में यही मनुष्य का इतिहास है। इस इन्सान का क्या नाम पड़ा और किन-किन अवस्थाओं के आधार पर, शुरू में, किस-किस नाम से पुकारा गया, इसका वर्णन अगले भाग में किया जायगा।

३

आर्य

आर्य एक पारिभाषिक शब्द है जो एक भाषा-विशेष बोलने वालों की समस्त जाति के लिए प्रयुक्त किया जाता है—वह बोली जो हिन्दुसतन से लेकर यूरोप तक फैली हुई है और इसी वजह से इण्डो-यूरोपियन भी कहलाती है। इंगलैंड, फ्रांस और हिन्दुस्तान के लेखक और विद्यार्थियों ने यह मान लिया है कि आर्यन ऐसा शब्द है जो बोली के सारे कुटुम्ब के लिए प्रयुक्त किया जाना अधिक सरल मालूम होता है। कुछ विद्यार्थी उसको इण्डो-ईरानियन भी कहते हैं। असल में 'आर्यन' उन्नीसवीं शताब्दी का पारिभाषिक शब्द था। मौजूदा शताब्दी में 'हिन्द-यूरोपीय' इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'आर्यन' का अर्थ अब बहुत-कुछ संकुचित हो गया है। बीसवीं शताब्दी में इसका अर्थ वैदिक और ईरानी है, जिसे 'हिन्द-ईरानी' भी कहते हैं। आर्यन शब्द संस्कृत से लिया गया है। इसका मूल पहले ऐर्य—आर्य था। बाद की संस्कृत बोली में 'आर्य' का अर्थ किसी अच्छे कुटुम्ब वाला होता था और प्रशंसात्मक अर्थ में उसका प्रयोग होने लगा था। उससे

पहले इस शब्द का प्रयोग एक जातीय शब्द की जगह किया जाता था। मनुस्मृति के समय से इस समय तक हिन्दुस्तान को आर्यावर्त कहते हैं, यानी आर्यों के रहने का स्थान। विद्याओं ने हिन्दुस्तान में जितनी उन्नति की है वह वास्तव में ऋग्वेद के बाद ही हुई है। और उस समय, सिवाय हिन्दुस्तान के, दूसरे देशों की राजनीतिक और सामाजिक अवस्था बहुत गिरी हुई थी। यह बात भी मान ली गई है कि हिन्द-यूरोपीय जातियों में सबसे पुरानी विद्या अगर कोई मिली है तो वह वैदिक आर्यों की ही थी। इस हिसाब से वैदिक आर्य दूसरे हिन्द-यूरोपीय लोगों से जरूर अच्छे थे। लेकिन इसका जरूरी परिणाम यह नहीं हो सकता कि दूसरे हिन्द-यूरोपीय लोग विद्या को छोड़कर दूसरी बातों में भी नीचे थे। मतलब यह है कि आरम्भिक उन्नति और सभ्यता का स्थान अगर कोई हो सकता है तो वह हिन्दुस्तान है।

वेद में आर्यों की बाबत इस तरह लिखा है कि देवताओं के मानने वाले अपने को आर्य कहते थे—अपने उन विपच्चियों के विरुद्ध जो अपने को दास कहते थे। यह मानना पड़ेगा कि वेद, जिनमें यह शब्द आया है, सब पुस्तकों से अधिक पुराने हैं। 'आर्य' शब्द वेद में युगों से एक विशेष शब्द मान लिया गया है, इसलिए उसका मूल अर्थ ढूँढ़ने से कोई विशेष फल नहीं निकल सकता। प्रोफेसर बॉप ने आर्य का मूल 'आर' से निकाला है, जिसका अर्थ होता है 'आना', या 'आर्क' से निकाला है, जिसका अर्थ होता है 'आदर'। यजुर्वेद में यह शब्द बिलकुल वैसे ही प्रयुक्त होता है जैसे ऋग्वेद में। ऋग्वेद में जब 'आर्य-पत्नी' शब्द आता है तो

उस समय आर्य का अर्थ होता है 'पति' और जब 'दास पत्नी' प्रयुक्त होता है तो उस समय दास का अर्थ 'पति' से होता है। ऋग्वेद में 'इरा' से केवल पतली चीज, यानी दूध इत्यादि ही न समझना चाहिए, बल्कि वर्षा का पानी भी समझा जा सकता है। दूसरी जगह 'इरा' का अर्थ जमीन होता है, लेकिन यह अर्थ कुछ साफ नहीं है। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि 'इरा' का अर्थ, जो पहले जमीन था, बाद में खाना किस तरह हो गया। तो, हमको याद रखना चाहिए कि पुरानी जबानो का यह तरीका था कि कारण और कार्य को मिला देते थे। 'इरा' का अर्थ पहले जमीन हुआ। उस समय बहुत-सी हालतों में इसका अर्थ जमीन से पैदा होने वाले अन्न से भी रहा होगा। उदाहरण के लिए, गाओ यानी गाय का अर्थ ऋग्वेद में सिर्फ दूध ही नहीं था, बल्कि वे सब चीजें थीं जो गाय से निकलती हैं।

चाहे आर्य का अर्थ 'धरती', 'जन्म' या खेती-बाड़ी से सम्बन्ध रखने वाला हो, इस शब्द का उपयोग धरती के रहने वाले सभी व्यक्ति अपने लिए करते थे। अवस्ता में आर्य के अर्थ हैं 'आदर करने वाला'। अरमुज़्द ने जो पहला स्थान मालूम किया वह ऐर्यानम कहलाया। उसके सारे पुजारी उसको ऐर्य कहते थे। यूनान के रहने वाले, जो भूगोल विद्या जानते थे, आर्यन का प्रयोग अवस्ता के मुकाबले ज़्यादा फैले हुए अर्थ में करते थे, यानी वह सारा हिस्सा जो दक्षिण में हिन्द महासागर से, पूरब में सिंधु नदी से, उत्तर में हिन्दूकुश से और पश्चिम में फारस की खाड़ी से घिरा है, आर्यना के नाम से पुकारा जाता था। जिस समय जोरास्ट्रियन

धर्म पश्चिम की ओर फैला, फारस और मेदिया के रहने वालो ने आर्य नाम अख्तियार कर लिया। हेलानिकस, जो हेरोडोटस से पहले का इतिहास लिखने वाला माना जाता है, फारस को एरिया कहता है। पुराने जमाने की लिखावटों में एक प्रकार की नुकीली लिखावट भी होती थी। उससे पता चलता है कि अरिया का शब्द आदर के अर्थ में प्रयुक्त होता था। उसमें डेरियस ने अपने को एरिया कहा है और 'अरिया-कित्र', जिसका अर्थ 'आर्यन' या 'आर्यन नस्ल' है, जो मूल रूप में बहुत-से फारसी ऐतिहासिक नामों में भी पाया जाता है, जैसे अरिआरेमनेस-आरिओबारजेन्स। जब बाहरी आक्रमणों और पराजय के सैकड़ों साल बाद फारस ने सासानियन हुकूमत के असर में आकर फिर से जाति की हुकूमत कायम कर ली, उस समय राजाओ और मासडेन्स के पुजारियों ने भी अपने को आर्य जाति का राजा कहा है। इसीलिए परसिया का नया नाम ईरान हो गया। आरमेनिया में भी मूल आर्य ही समझा जाता है। पुराना नाम भी आरमीना है, मगर इसका पता नहीं चलता कि वह किस प्रकार निकला है। केवल इतना मालूम है कि ऐमेनिया की बोली में 'आरी' मौजूद है, जो आर्यन या ईरानियन के अर्थ में बोला जाता है और जिसका अर्थ बहादुर होता है। काकेशस के लोग, जो ईरानियन भाषा बोलते हैं, अपने को अरोन कहते हैं। यक्सार्टेस और ओक्सस के रहने वाली आर्य और अनार्य जातियाँ एक-दूसरे से मिल गई हैं। इनकी लड़ाइयों के वर्णन फारसी भाषा में मिलते हैं। जिस तरह 'शाहनामा' में ईरान और तूरान की दोस्ती और दुश्मनी का वर्णन है, ओक्सस

और ट्रांसोक्सिआना के लागों को भी आरियाका और अन्तारियाना कहते हैं। इसी तरह थ्रेस का पुराना नाम आरिया था और विस्चूला नदी पर रहने वाला जर्मनी का एक कुटुम्ब आरो कहलाता है। मगर यह पता नहीं चलता कि वह शब्द कहाँ से निकला है।

हिन्दुस्तान की आर्य जाति एशियायी जातियों में शायद सबसे ज़्यादा उन्नत और सभ्य है। उत्तरी हिन्दुस्तान की भाषाएँ बहुत भिन्न हैं, इसी तरह, जिस तरह अंग्रेजी और जर्मनी भाषाएँ। दक्षिणी भाग की भाषा संस्कृत नहीं है बल्कि द्रविड़ है; और दोनों भाषाओं की वर्णमाला, जो बड़ी हद तक भिन्न-भिन्न रूप की है, सारी-की-सारी पुरानी पाली भाषा से बदली हुई है। शायद उनकी जड़ द्रविड़ से है अथवा आर्यन से।

आर्य जाति के सबसे पुराने इतिहास पर जो हल्की-सी रोशनी पड़ती है, वह इतनी है कि वे चौपाटी लोग थे जो ओक्सस के पहाड़ों और घाटियों में रहते थे। मगर यह पिछली शताब्दी का तत्त्व है। वर्तमान शताब्दी का खयाल है कि हिन्द-यूरोपीय लोगों के रहने की पुरानी जगह प्रायः हंगरी की तरफ है। चौपाटियों के आस-पास दक्षिण की तरफ सेमेटिक लोग आबाद थे, जो सीरिया से तितर-बितर होकर यूफेरिटीज नदी और फारस तक फैल गए थे। यही दो जातियाँ दक्षिणी यूरोप, उत्तरी अफ्रीका और दक्षिण-पूर्वी एशिया में फैलीं। आर्यों ने अपनी भाषा का नाम यूरोप के बड़े हिस्से में फैलाया और सेमेटिस ने अपनी भाषाओं को अरब, शाम और उत्तरी अफ्रीका तक फैला दिया।

प्रोफेसर हाटनी का विचार है कि आर्य लोग बहुत समय

से सरस्वती के किनारे पर रहते थे और यहीं से वह पूर्व और पश्चिम की ओर बढ़े थे। पुराने आर्य उत्तर में किसी टापू में रहा करते थे। वह टापू अब नष्ट हो गया है। सबसे पहले ये उसी टापू में दिखाई दिए थे। और वह युग अब आर्य-धर्म के अनुसार दो अरब साल से भी ज्यादा पहले का माना जाता है। मगर पाँच हजार साल का समय ही ज्यादा सही है, जब से कि आर्यों की उन्नति हुई।

४

इतिहास विद्या

अक्षर की खोज से पहले पिछली दशा की याद कुछ वर्षों से ज्यादा जीवित नहीं रह सकती थी, और जो रहती भी थी, वह स्पष्ट नहीं होती थी। वे हालात, जिनका सम्बन्ध मनुष्य के शरीर की दशा से होता था, या जो साधारण लोगों के हृदय व दिमाग से सम्बन्धित थे, सम्भव है कि कुछ समय के लिए एक से दूसरे तक याद रहते रहे हो, मगर समय बीतने से उनका भूल जाना अनिवार्य था। लेखन ने यद्यपि रीति-रिवाज को स्थायी 'रिकार्ड' में किसी सीमा तक कायम कर दिया था, मगर उसके प्रारम्भ की तिथि किसी ने नहीं लिखी। इतिहास के लेखकों ने जब से घटनाओं की तिथि निश्चित करना और लिखना शुरू किया है, उससे कई सौ साल पहले लेखन-कला का आविष्कार हो चुका था। हिरोडोटस और थसी डाइड्स के वर्णन बिना तिथि के हैं। इतिहास लिखने का यह तरीका बहुत बाद में अपनाया गया है। यूनानियों और रूसियों का पहला इतिहास बिलकुल गुम हो चुका है और उसीके साथ-साथ ड्रूइड्स का इतिहास भी नष्ट हो गया। चीन के एक बादशाह

ने सन् २२० ई० पू० में अपने राज्य की सब पुस्तके जलवा दी थी; और जिन लोगों को ये विषय ज़बानी याद थे उनको जीता गड़वा दिया गया था। इस बादशाह का नाम चे ह्वांग-ते था। जिस समय वह गद्दी पर बैठा, उसकी उम्र तेरह साल की थी; और यद्यपि वह बहुत छोटा था, मगर उसने बहुत जल्दी अपना प्रभाव चारो ओर फैला दिया था। से-गानफू को उसने अपनी राजधानी बनाया। वहाँ पर उसने एक बहुत बड़ा महल तैयार करवाया। दुश्मनों को खदेड़कर मगोलिया के पहाड़ों से बाहर निकाल दिया। इसी बादशाह ने चीन की लम्बी-चौड़ी लोहे की दीवार की नींव डलवाई थी, मगर उसके पूरा होने से पहले वह मर गया। इतने सुधार और परिवर्तन करने पर भी जनता इस बादशाह से प्रेम नहीं करती थी। इसका कारण यह था कि उस समय के चीनी लोग किसी सुधार को पसन्द नहीं करते थे, बल्कि पुरानी लकीर के फकीर थे और लड़ाई-झगड़े के किस्से-कहानियों की बड़ाई करते थे। यह बात बादशाह के लिए बहुत भयंकर साबित हो रही थी। इसलिए राजनीति के खयाल से उसने इस किस्से को हमेशा के लिए समाप्त कर देना चाहा। इस इच्छा को पूरा करने के लिए उसने एक आज्ञा निकाली कि सारी ऐसी पुस्तकें, जिनमें राज्य की पुरानी बातें लिखी हो, आग मे जला दी जायँ। केवल वे पुस्तके, जिनमें इस बादशाह के राज्य की बातें लिखी हों, रहने दी जायँ। यह भी आज्ञा दी कि जो कोई इस काम मे बाधा डाले, वह मार दिया जाय और उसके मृत शरीर को बाजार में फेंक दिया जाय। जो कोई बीते हुए समय का नाम लेगा और इस समय के राज्य को बदनाम करेगा, वह अपने कुटुम्ब सहित

मार डाला जायगा, और जिस मनुष्य के पास इस आज्ञा के तीस दिन के बाद ऐसी पुस्तकें निकलेगी, उनको बल पूर्वक जला दिया जायगा। अतः ४६० बडे-बड़े विद्वान्, जो इस आज्ञा के विरोधी थे, कत्ल कर दिये गए और फलस्वरूप पुरानी विद्याएँ नष्ट हो गई।

बिना किसी विशेष सूत्र के सच्ची तिथि नहीं लिखी जा सकती। जब इस पर सोच-विचार किया गया, तो भिन्न-भिन्न लिखने वालों ने भिन्न-भिन्न घटनाओ को चुन लिया और हर छोटे-बड़े कुटुम्ब ने समय की जाँच का अपना-अपना अलग तरीका बना लिया। प्रायः लोग बादशाहों की राजगद्दी के समय से तिथि को शुरू करते थे। सबसे ज़्यादा पुराना तरीका बाबुल, यूनान और रोम के रहने वालों का था। यहूदियों का कोई आम तरीका न था। बाबुल वालो ने सन् का आरम्भ सन् ७४७ ई० पू० से किया, जब कि नबानसर ने बाबुल में अपना राज्य स्थापित किया था। यूनानियों ने ओलम्पियाड्स सन् ७७४ ई० पू० से और रोमन सन् ७५३ ई० पू० से गिना है। इसी तरह से इस्लाम में सन् का आरम्भ हिजरी से हुआ जबकि मुहम्मद साहब ने सन् ६२२ ई० में मदीना की यात्रा की थी।

५

भाषा

भाषा की जानकारी हमको क्या सिखलाती है ? बोली और शब्द, व्युत्मति बोलियों का मेल-जोल और उनकी वास्तविकता, मनुष्य के इतिहास से उनके जीवन और आगे बढ़ने का तरीका—ये चीजे हैं जो भाषा से हमको मालूम होती हैं। भाषा-विज्ञान मानव-विज्ञान की एक शाखा है। मनुष्य को हम दो तरह का देखते हैं। कुछ हिस्सा उसका स्वाभाविक है, यानी जहाँ तक उसकी इच्छाओं, योग्यताओं और शरीर का सम्बन्ध है; और कुछ हिस्सा उसकी जानकारी से सम्बन्ध रखता है, यानी क्रिया, शिष्टाचार तथा साथ रहने की आदत, जो अपने पूर्वजों से सीखी है।

मानव-विज्ञान का तत्त्व यह है कि साधारण दशा से मनुष्य किस तरह पूर्ण मनुष्य हो गया। अगर किसी सभ्य जाति के, किसी हाल के पैदा हुए, बच्चे को उसकी अपनी हालत पर छोड़ दिया जाय और उसको किसी चीज की सुविधा न दी जाय, तो वह कभी अपने लोगों की बोली न बोल सकेगा, कोई जबान उसकी जबान न होगी। उसको

कोई काम करना भी नहीं आएगा। इन सब चीज़ों को सीखने के लिए उसको कुछ करना पड़ेगा, बिलकुल उसी तरह, जिस तरह सबसे पहले मानव को करना पड़ा होगा। अगर मनुष्य हथियार बना सकता है, अगर वह मेल-जोल बढ़ा सकता है और परिस्थिति के अनुसार वह अपनी इच्छाओं के ज़रिये पैदा कर सकता है, तो वह अपनी बोली के लिए चिह्न और चित्र भी बना सकता है। हथियारों की तरह मनुष्य ने ही अक्षरों को भी बनाया है।

मनुष्य गूँगा पैदा नहीं हुआ। अक्षर-विद्या परमेश्वर-विद्या है। यह पहले से ही मौजूद है, जिसका सबूत यह है कि सबसे पहला मनुष्य बोलता हुआ पैदा हुआ था। इस बात का वर्णन वेद में इस तरह आया है—मनु का एक मन्त्र है, 'वेद शब्देभ्यरादौ पृथक् संस्था निर्ममे'। शुरू में परमेश्वर ने वेदो के अक्षरों से ही सारी प्रकृति के अंगों को अलग पैदा किया।

६

बोलियों की बनावट

यह बात मान ली गई है कि सबसे पहले जिस बात ने मनुष्य को भाषा की कल्पना दी और ध्यान दिलाया, वह यह थी कि उसे अपने विचार दूसरों को बतलाने की आवश्यकता और इच्छा हुई। मनुष्य की मेल-जोल की इच्छा भी एक विशेष तत्त्व है। शुरू से एक-दूसरे को समझने के लिए ऐसी आवश्यकता हुई होगी। सारी विद्याएँ मनुष्य ने अपने खाने-पीने और सरदी-गरमी से बचने के लिए खोजी हैं। इसी तरह अक्षर और बोलियाँ भी अपने विचारों को जाहिर करने के लिए ईजाद कीं। एक मनुष्य अकेले में रहकर बोली का आरम्भ नहीं कर सकता और अलग रहकर बोलना भूल जाता है। इसी तरह सबसे पहला मनुष्य तब तक बोली न बोल सका होगा जब तक कि वह मेल-जोल के लिए और दूसरी आवश्यकताओं से लाचार न हो गया हो। यह तो मुमकिन है कि अकेला मनुष्य अपने-आप कहीं पड़ा रहे, कुछ बेढंगे तरीके के हथियार भी बना ले और किसी तरह अपना पेट भर ले। लेकिन यह मुमकिन नहीं कि वह अकेला

रहकर बोलना सीख ले। इन सब बातों के होते हुए यह खोज करना कि परिस्थितियों में सबसे पहले मनुष्य की ज़बान से कैसा शब्द निकला होगा, बिलकुल निष्फल होगा।

७

बोलने और लिखने का आरम्भ

जैसे बातचीत का आरम्भ बोलने की इच्छा पैदा होने से होता है, उसी तरह लेखन-कला का आरम्भ दिखाई देने वाली चीजों के बेढंगे रूप को व्यक्त करने में छिपा है। किसी भाषा की वर्णमाला की खोज, किसी और रूप से, सिवाय इस तरीके के नहीं हुई कि दिखाई देने वाली चीजों और उनसे सम्बन्धित चीजो को मान लिया जाय। प्रश्न यह है कि दुनिया में हमारे चारो ओर कौनसी चीजें अपना असर डालती और छोड़ती हैं? उत्तर स्पष्ट है कि ये आँख से देखकर और हाथ से छूकर मालूम होने वाली चीजें हैं। उनके अपने कारण और गुण हैं, और कुछ नहीं। लिखने या आँख से इशारा करने के लिए पहली सीढ़ी यह है कि किसी चीज़ या उसके गुण का थोड़ा-सा ढाँचा खींचा जाय जिसे आँख देख सके और हाथ के इशारे से उसका अर्थ बतलाया जा सके। इसके बाद दिमाग अपने-आप उस चीज़ की गहनता को समझ लेता है, जैसे पेड़ की ओर जब नज़र जाती है तो सबसे पहले दिमाग में पेड़ का चित्र उतरता है और

उस समय आँखों को वह चीज़ पेड़ मालूम होती है। उसके बाद पेड़ से सम्बन्ध रखने वाली जिन चीजों का दिमाग पर चित्र उतरता है, वे लकड़ी, पत्ती, फूल-फल आदि हैं। चिड़िया के फैले हुए पंख देखकर पहले चिड़िया, फिर उसकी उड़ान, फिर ऊँचाई और फिर आकाश इत्यादि की ओर हमारा ध्यान जाता है। अकेले रूप से किसी चीज़ का एकाएक खयाल नहीं आता। मतलब यह है कि इन्सान को शुरू से दुनिया-भर की बातें, किसी-न-किसी रूप में, जीवित रखने की इच्छा थी; और इसी इच्छा को वह उन्नत करके लेख के रूप में ले आया।

८

विचारों को प्रकट करने के साधन

मनुष्य के पास अपने-आपको व्यक्त करने के बहुत से साधन हैं; जैसे इशारे, शरीर के अंगो का करवटे बदलना, खास तौर से बॉह और हाथों का, चेहरे के रंग और पट्ठो की हरकतें, सुनाई देने वाली आवाजे निकालना इत्यादि। जब दो ऐसे पुरुष आपस में मिलते हैं जो एक-दूसरे की बोली को बिलकुल नहीं समझते, तो उस समय वे अपने विचारों को ज़ाहिर करने के लिए क्या करते हैं? वे मुँह, हाथ, शरीर और आवाज़ सब एक साथ काम मे लाते हैं। शुरू में इशारों की भाषा थी, यानी जीभ से बोलने की जगह इशारो से बातचीत होती थी। उदाहरण के लिए यों समझना चाहिए कि जैसे बहरे और गूँगे आपस में बातचीत करते हैं।

विचारों को फैलाने के लिए आवाज़ एक विशेष स्थान रखती है। वह बिना बीच वाली चीजो के रुके आसानी से सुनाई दे सकती है। सुनने वालों की आँखे और बोलने वालों के हाथ, बातचीत के समय दूसरे कामों में लगे रह सकते हैं। प्रकाश और अन्धकार में आवाज एक-सी ही सुनाई देती है,

और किसी के ध्यान को इस तरह अपनी ओर खींच सकती है जो दूसरी तरह सम्भव नहीं है। मगर उसके साथ जब कोई मनुष्य सरस्वती के इस प्रसाद से हीन हो जाता है, उस समय आवाज की जगह किसी दूसरी शक्ति की उसमें उन्नति हो जाती है; जैसे अगर किसी आदमी के हाथों की शक्ति जाती रहे, तो उसके पैरों की शक्ति बढ़ जाती है।

शुरू में सुनी हुई आवाजों से चित्र और रेखाएँ बनाई गई। उसके लिए दो तरह के साधन काम में लाये गए। एक जानवरों के बोलने की आवाजे और बेजान चीज़ों के स्वरूप और उनका प्रभाव। दूसरे, आदमी की आवाज़ की नकल, उसकी स्वाभाविक आवाज़, उसके मत और चेतना को जागृत करती है। जैसे शरीर की साधारण हरकतों, करवटों, मुँह के रंग, पट्ठों के फैलने और सिकुड़ने का अर्थ जल्दी समझ में आ जाता है। जैसे एक दिन का पैदा हुआ मुर्ग़ी का बच्चा अपनी माँ की आवाज के मतलब को समझने लगता है। जब हम मुर्ग़ी की आवाज या हँसी और कराहने की आवाजें सुनते हैं तो हमको उसकी जरूरत नहीं होती कि अक्षर में हमको उसका अर्थ समझाया जाय। यूनान वालों ने जानवरों और चीजों की आवाजो पर अक्षर बनाये और शुरू में भाषा बनाने का यही तरीका काम में लाया गया। यह इस तरह हुआ कि पहले चीजों और जानवरों के नाम प्रकृति पर रखे गए। जैसे म्याऊँ-म्याऊँ से बिल्ली समझी गई। सोते हुए आदमी के खर-खर करने से सोता समझा गया। साँय-साँय से हवा चलने की आवाज़, छम-छम से पानी बरसने की आवाज़ समझी गई। भौं-भौं से कुत्ता और टियाऊँ-टियाऊँ की आवाज

से बच्चे का रोना समझा गया। झीं-झीं से झींगुर नाम रखा गया। टटीरी नाम उसकी इसी तरह की आवाज़ पर रखा गया। कानखजूरा कीड़े का शरीर खजूर की शक्ल का होता है, इसलिए उसका नाम कानखजूरा रखा गया। हाथी नाम उसकी सूँड को हाथ समझकर रख दिया गया। मुँह से जो सफेद-सा रस निकलता है, उसका नाम थूक इसलिए रख दिया गया कि मुँह से निकलते समय इसी तरह की आवाज़ 'थू' निकलती है। शब्द फूँकना या फूँक भी इसी प्रकार से हुए, क्योंकि फूँकते समय ऐसी ही आवाज़ निकलती है। इसी तरह छींकना, सिनकना, खाँसना आदि सभी नाम रखे गए।

अगर हम थोड़ा-सा ध्यान दें तो साफ पता चलेगा कि वास्तव में पशु और पुरुषों की पुरानी बोली में एक तरह की समानता पाई जाती है। उन प्राणियों के मुँह से जो शब्द कष्ट, क्रोध, आनन्द और डर के समय बिना सोचे-समझे निकलते हैं, वे एक ही प्रकार के होते हैं; जैसे बिल्ली जब किसी पक्षी या चूहे को पकड़ लेती है तो वह चूँ-चूँ करता है। मनुष्य का बच्चा पैदा होते ही टियाऊँ-टियाऊँ करने लगता है। कोई कष्ट पहुँचने पर मुँह से तत्काल 'सी' निकल जाता है और डर के समय 'हंऽ' निकल जाता है। इससे पता चलता है कि शुरू में मनुष्य की बोली जानवरों की बोली से मिलती-जुलती थी। बाद में जो भाषा चित्रों और अक्षरों के रूप में पैदा हुई, उसका कारण केवल मनुष्य की बुद्धि है, जिसको काम में लाकर वह बोलने वाला जानवर कहलाने लगा।

६

बोली अपने-आप पैदा होती है

बोली और बोली से सम्बन्ध रखने वाली दूसरी चीजें थोड़ी व्याख्या चाहती हैं। इसलिए हमारे योग्य पाठक विज्ञान के सम्बन्ध में इस प्रस्तावना को गैर-सम्बन्धी सोचकर घबराएँ नहीं। बोली की असलियत को पहचानने और उसके गुण समझने के लिए उन सीढ़ियों को पार करना उचित ही होगा जिनसे चढते हुए वह आज यहाँ आ पहुँची है। यह बहुत दिलचस्प भी है। बोली बनाने के लिए अपने विचार को प्रकट करने की इच्छा मौजूद होना आवश्यक है। पीड़ा से जो चीख निकलती है, या सुख में जो हँसी की आवाज पैदा होती है, उसका मतलब तो समझ में आता है मगर वह भाषा नहीं है। फिर भी अगर उनको दूसरों को बताया जाय तो वह बोली बन जाती है। मनुष्यों और जानवरों के विचारों के प्रकट करने में अन्तर साफ दिखाई देता है। जानवर समझदार भी होते हैं और मनुष्य के साथ-साथ रहकर उसके काम को सीख लेते हैं। वे मुख्य-मुख्य इशारे समझने लगते हैं, जैसे क़ू-क़ू की आवाज़ से कुत्ता और ती-ती की आवाज़ पर मुर्गी दौड़कर

आ जाती है। वे समझते हैं कि कोई खाने की चीज़ देने को बुलाया जा रहा है। बोली की आवश्यकता इसलिए मालूम हुई कि वह आवश्यक चीज़ों को समय-समय पर पूरा करती रहे और जो कठिनाई इशारों द्वारा विचार को प्रकट करने के लिए मालूम होती है वह दूर हो जाय। यह कहना बेकार न होगा कि जंगली, यानी अपने-आप उगने वाले, वृक्षों की तरह बोली भी अपने-आप पैदा होती है। सुनने में तो यह बात कानो को अनोखी और विचित्र मालूम होती है, लेकिन ज़रा-सा विचार करने पर यह समझना आसान हो जायगा कि बोली की बनावट किसी ऐसे तत्त्व पर नहीं है, जो मनुष्य ने पैदा किया हो और न वह किसी विचार के बाद ही बनी है। इसके विपरीत, जिस समय मनुष्य अपने चारों ओर की दशा और अवस्था को देख रहा था, अपने जीवन की आवश्यकताओं को सुलझाने, सुविधाएँ पैदा करने और अपने जीवन-मरण तथा खाने के प्रश्न को हल करने में लगा था, उसी समय अपने-आप बोली एक हलचल मचाती हुई पैदा हो गई। हम जिस तरह बोलते हैं, उसी तरह क्यों बोलते हैं? जो निशान और अक्षर हम तक पहुँचते हैं, पहुँचाने वाले ने उसी रूप में क्यों पहुँचाए? किसी दूसरे रूप में क्यों न पहुँचाए? ये ऐसे प्रश्न हैं जिनकी व्याख्या कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव है। क्योंकि हम बता चुके हैं कि भाषा-परिवर्तन की कड़ी अन्तहीन है जो बहुत समय तक जारी रहने के बाद हम तक इस रूप में पहुँची जैसी कि अब है। अगर हम इसके आरम्भ, मूल और असलियत की जाँच करना चाहें तो निश्चित है कि उसमें झाँक भी न सकेंगे। बोली बनने के

बाद बहुत समय तक, बजाय इसके कि उसको हर कोई अलग-अलग करके बनाता, वह एक-दूसरे तक पहुँचाई जाती थी। जब एक बार कोई चीज किसी नाम से सम्बन्धित कर दी जाती है तो वह उसीकी होकर रहने लगती है, उसकी जड़ से कोई मतलब नहीं होता। उसकी जड़ के प्रश्न को भुला दिया जाता है और उसका रूप धीरे-धीरे बदल जाता है, जिसका कोई पता नहीं चलता। उसका अर्थ इस तरह बदल जाता है कि तुलना करना हँसी की बात मालूम होती है। वास्तव में भाषा कोई अलग चीज़ नहीं है। वह सदा से बोलने वाले के मुँह और दिमाग में मौजूद रही है; और उस समय निकलती है जब उसके निकलने के साधन उसे मिल जाते हैं।

१०

मनुष्य और पशुओं की भाषा

एक समय ऐसा था जब कि मनुष्य आरम्भ में जानवर की तरह भी नहीं बोल सकता था। मनुष्य का आरम्भ चाहे कम दरजे के जानवर से हुआ हो, या न हुआ हो; भाषा का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। मौजूदा शारीरिक और दिमागी हालत में ढलने के बहुत समय बाद मनुष्य इशारों से बात करने के योग्य हुआ? किस वक्त ऐसे निशान ईजाद हुए? किस शीघ्रता से उनमें परिवर्तन और उन्नति हुई? और उनके मूल की किस समय से खोज शुरू हुई? इस तरह के प्रश्नों के जवाब की खोज बेकार होगी, बिलकुल इसी तरह, जैसे इसकी खोज की जाय कि पहला हथियार किस समय काम में लाया गया और किस समय उसमें सुधार पैदा हुआ? किस समय आग मनुष्य के काम में आई और किस समय खाना पकाने का ढंग मालूम किया गया? उन्नति की कड़ियाँ तो मालूम हैं, किन्तु उनकी ठीक तिथि मालूम होना कठिन है। बस इतना मालूम है कि एक जाति के बाद दूसरी जाति ये इशारे अपनाती गई और धीरे-धीरे आगे आने वाली जातियाँ उनमें सुधार पैदा करती आईं।

कुछ थोडी ज़बानों के लिए कहा जा सकता है कि उनकी उम्र तीन-चार हजार साल की है। साधारण तौर पर चिड़ियों और जानवरों की बोली पर बोली की नींव डाली गई है। ऐसा कभी नहीं हुआ कि अक्षर जमा करते जायँ और जब जैसी आवश्यकता पडे, अक्षरों को निकालकर वैसे ही विचार जमा दिए जायँ। बल्कि होता यह है कि कोई चीज देखकर पहले दिल में विचार पैदा होता है, फिर उसका निशान निश्चित किया जाता है। उस समय पहले फेफड़ा हरकत में आता है और किसी आवाज को पैदा करने के लिए अन्दर-ही-अन्दर तैयार हो जाता है; और फिर एक उचित ताकत के साथ आवाज बाहर निकालता है, यहाँ तक कि वह गले के आखिरी हिस्से यानी हलक़ के पास तक पहुँच जाता है। उस समय आवाज में 'लय' और 'गूँज' पैदा होती है। फिर यहाँ से आवाज़ आगे बढ़ती है और तीन चीज़ों से टकराती है—जीभ, तालू और होंठ से। ये तीनो अंग अक्षरों की खराद कहलाते हैं, जिन पर चढकर अक्षर साफ रूप में बाहर निकलते हैं। इस विषय पर टी० हार्ट अलेकजैण्डर गिल और विलियम बुलोकर्स ने बहुत-कुछ लिखा है।

मनुष्य और जानवर दोनों में आवाज़ निकालने के अंग मौजूद हैं। मगर दोनों के अन्दर और बाहर के अंगों की ताक़त से जो आवाजें निकलती हैं, उनकी स्थिति अलग-अलग है यानी पशुओं के मुँह से जो आवाज़ निकलती है उसे हम टूटी-फूटी बोली कहते हैं, मगर जो मनुष्य के मुँह से निकलती है उसे स्पष्ट उच्चारण कहते हैं। जानवरों की बोली में कोई शाब्दिक अर्थ नहीं होते, और हर बोली का अलग-अलग

अर्थ होता है, जो उसके जाति वाले ही समझ सकते हैं। मगर मनुष्य की बोली में अक्षर-अक्षर के अर्थ होते हैं। मनुष्य के कण्ठ और ज़बान से साँस के साथ जो आवाज़ निकलती है, वह बिना अर्थ के नहीं होती। जैसे एक मामूली अक्षर है 'हूँ', कण्ठ के अंग को फैलाकर और तंग करके यह अक्षर जब निकाला जाता है तो उससे कई अर्थ पैदा होते हैं, जैसे कभी स्वीकार के अर्थ में, कभी इन्कार के मतलब मे और कभी रंज के जाहिर करने मे समझे जाते हैं। मतलब यह है कि बोलने वाले की जो इच्छा होती है, उसके अनुसार गले से स्वर निकलता है और उसका अर्थ अलग-अलग होता है। यानी प्रकृति ने मनुष्य के गले को स्वर और लहरों का ख़ज़ाना बनाया है। साधारण तौर पर जिन स्वरों का प्रयोग होता है वे तीन तरह के होते हैं।', !, ।'

शायद संस्कृत की वर्णमाला की कल्पना करने वालों ने पहले तीन अक्षर यानी आ, ई, उ, इसी तत्त्व पर बनाए होंगे। दुनिया मे जितनी जबानों की वर्णमाला है उन सबका पहला अक्षर '।' है। यही पहला स्वर है, जो इन्सान की ज़बान से निकलता है और इसीसे सैकड़ों तरह के अर्थ निकलते हैं।

११

बोली का प्राचीन इतिहास

बहुत प्राचीन युग से इतिहास लिखने की विद्या शुरू हुई है। मिस्र के इतिहास से ज़बान की पुरानी हालत का कुछ थोड़ा-सा अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। लिखने की विद्या में दुनिया का सबसे पुराना युग 'हीरोग्लेफी' लेख में पाया जाता है। इसमें उस समय की यादगारें हैं जो ईसा से करीब दो-तीन हज़ार साल पहले गुज़रा है। चार हज़ार साल से ज़्यादा समय हुआ जबकि मिस्र वाले व्यवसाय, सामाजिक उन्नति और सभ्यता की ऊँची सीढी पर पहुँच चुके थे। प्रसिद्ध पुस्तक 'इञ्जील' से पता चलता है कि इज़रायली जाति उस समय मौजूद थी। पुराने चाल्डिया में उरुख के मन्दिर की ईटों के लेख २००० ई० पू० से ज़्यादा पुराने हैं। यह पता तो नहीं चलता कि इतिहास लिखना आरम्भ होने की कौन-सी ठीक तिथि है, किन्तु इतना मान लिया गया है कि दुनिया की सभ्यता पत्थर-युग से—वह युग जिसमें मनुष्य पत्थर की चीज़ों का व्यवहार करते थे—धीरे-धीरे आगे बढ गई थी। मिस्र, बाबुल और चीन को सभ्य हुए चार हज़ार या पाँच हज़ार साल हो चुके हैं। इससे पता चलता है कि इन देशों की

विद्या और शिक्षा-संस्थाएँ ऊँचे दरजे पर पहुँच चुकी थीं और ठीक उसी समय शब्द-व्युत्पत्ति भी उन्नति पाती गई होगी। इबरानी और अरबी भाषाएँ एक-दूसरे से बहुत नाता रखती हैं। इन दोनो में से कोई भी पहली भाषा नहीं कही जा सकती। किन्तु यह सच है कि इन दोनों जबानों की जड़ में कोई ऐसी बोली है जो इन दोनों से भी पुरानी है और जिसको भाषाओं की माता कह सकते हैं। अधिक गहराई पर जाने से पता चलता है कि हिन्दू, मेडिज़, ईरानी, यूनानी, रोमन, जरमन, केल्ट्स और दासों की भाषाएँ बहुत पुरानी हैं। जब इन जातियों की भाषाओं का खजाना खुल हो गया और आर्यों के तितर-बितर होने से एशिया और यूरोप में फैल गया, उस समय एक जंगली जाति उठी जो एक आर्य भाषा बोलती थी। वह भाषा अब मर चुकी है।

जब तक बोलने वाली भाषाएँ पैदा न हुई थीं, इशारो से बातचीत करने का दस्तूर ही प्रचलित था। 'उह', 'हू', 'हे'— इस तरह के इशारों से विचार प्रकट करना होता था। और यद्यपि वे पूरे न थे, मगर ऐसे थे कि हर जाति के लोग उनको समझ लेते थे।

भाषाओं की बनावट में अन्तर का कारण मालूम होना इतना कठिन है कि उसकी व्याख्या इस समय तक नहीं हो सकी। एक कारण तो यह मालूम होता है कि कुछ भाषाओं ने अपने अक्षर अलग बना लिये और उससे अधिक कठिनाई पैदा कर ली। इसकी मिसाल चीनी भाषा के एक मामूली वाक्य में मिलती है, जैसे युट्सजे मीन च्यू सिन्टंग च्यु—इसका अर्थ हुआ—इस साल पतझड़ खत्म हुआ और जाड़ा शुरू।

यह देखा गया है कि संस्कृत, रूसी, यूनानी, लातीनी वेल्स और अंग्रेजी भाषाओं में केवल आर्य भाषा है, जो किसी प्राचीन युग में एक जाति के लोग बोलते थे। मगर जब इस पहली आर्य भाषा से कई रूपों में दूसरी भाषाएँ निकलीं तो वे एक-दूसरे की समझ से बाहर हो गईं और इस तरह संज्ञा, क्रिया और कर्म की जगह बदल गई, जैसे; घोड़ा लाओ, हार्स ब्रिंग यानी ब्रिंग दि हार्स। इस तरह से सारी दुनिया की भाषाओं की अन्तहीन शब्द-व्युत्पत्ति और उनकी बनावट से बोलने वाली जातियों की बुद्धि का पता चलता है। टूरारेरियन या तातार पीढी की भाषाएँ तुरकी, मंगोल, हंगेरियन, फिन्निश और ओस्त्याक हैं। द्रविड पीढ़ी की भाषाएँ तमिल, तैलुगु, कन्नड़ और मलयालम आदि दक्षिणी हिन्दुस्तान की भाषाएँ हैं। पोलीनेशिया मे दक्षिणी सागर के जजीरों की जबाने हैं। निग्रो-काफिर पीढी की भाषाएँ वे हैं जो अफ्रीकी जातियाँ बोलती हैं। समाज और राजनीति मे जबान बहुत प्रभाव रखती है। जहाँ जातियों का ज्यादा मेल-जोल रहा, वहाँ उसी जबान की ज़्यादा उन्नति हुई। दूसरी ओर, जहाँ एक जाति ने दूसरी जाति की सभ्यता के तत्त्व को माना, वहाँ उसकी भाषा और विचारो के कोष को भी ग्रहण कर लिया। इसी प्रकार बर-बेरियन तुर्कों ने अरबी भाषा का अधिक हिस्सा अपनी भाषा में ले लिया और अरबी ने इसी तरह फारसी को अपने में मिला लिया। उस समय फारस की सभ्यता ऊँची सीढ़ी पर पहुँच रही थी। इसी प्रकार दक्षिणी हिन्दुस्तान की द्रविड़ ज़बानें संस्कृत से सींची गईं।

१२

भाषा की उन्नति की सीढ़ियाँ

बोली तीन भागों में बँटती है--(१) अक्षर, (२) शब्द और (३) वाक्य। पहली स्थिति वह है जबकि बालक अपनी बोली में बड़बड़ाता और बुदबुदाता है। सुनने वाले उसकी इस बोली को नहीं समझ सकते। यद्यपि एक प्रकार से वह अर्थहीन शब्द निकालता है, मगर जबान के बढ़ने में उसका बहुत-कुछ प्रभाव है। इस अर्थहीन बोली का अर्थ कष्ट या प्रसन्नता होता है।

दूसरी स्थिति वह है जबकि बालक कुछ-कुछ समझने लगता है और आवाजों का अर्थ उसकी छोटी-सी बुद्धि में आने लगता है। यह वह समय होता है जबकि उसकी इच्छाएँ पूर्ण होने की ओर बढ़ने लगती हैं। इस सीढ़ी पर पहुँचकर जब वह अपनी माँ से टूटी-फूटी जबान में भिन्न-भिन्न ढंग से बोलता है तो उसके कई अर्थ होते हैं; जैसे शायद वह कहता हो कि दूध चाहिए, या मेरे चोट लग गई है, या मुझको गोद में ले लो, आदि।

तीसरी स्थिति वह है जबकि बालक कई तरह की बोली बोल सकता है और बहुत-सी बातें याद रखने की योग्यता

रखता है। बालक की जबान के आगे बढ़ने में दो हिस्से हो जाते हैं—एक नकल करना, दूसरा दिल से निकालना। पहला हिस्सा साफ है। दूसरे का अर्थ यह है कि बालक जान में या अनजान में, हर उस चीज़ की नकल करने की ओर झुकता है जो उसकी आँखों के सामने होती है। उसके आगे और पीछे की बातों की रेखाएँ उसके दिमाग में बनती रहती हैं और फिर एक समय वह आता है, जब बोली के रूप में ये जबान से निकलती हैं। बच्चा सैकड़ों की संख्या में शब्द सुनता है। उनमें से वह थोड़े-से चुन लेता है और उन्हीं को दोहराता है, दूसरों को छोड़ देता है। विलियम स्टर्न का कहना है कि बालक उसी चीज़ की ज्यादा नकल करता है, जिसको वह पसन्द करता है। इसीलिए बालक अपने माँ-बाप की तुलना में अपने बराबर के बहन-भाइयों की नकल ज्यादा करता है।

१३

नोकदार लिपि

जब ज़बानों और बोलियो की कल्पना कर ली गई तो उनको लिखने की आवश्यकता हुई। उस समय कागज़ ईजाद न हुआ था, इसलिए पत्थरों और सिलों पर अक्षर खोदे जाते थे। पूर्वी एशिया के हिस्सों में—जैसे फारस, बाबुल, असीरिया, मीडिया, आरमीनिया और मैसोपोटैमिया में—ये पाए जाते थे। यह नाम इसलिए पड़ा कि उनकी शक्ल तीर की नोक की तरह होती थी। इस प्रकार की लिपि का असली देश या तो एलन था या बाबुल। वहाँ से यह दूसरे देशों मे गई और शक्ल बदलती रही। पहले-पहल यह तरीका बाबुल और असीरिया की रहने वाली सभी जातियों ने प्रयुक्त किया था। वहाँ से हिन्दुस्तान की तूरानी जाति और फारस की आर्य जाति तक पहुँचा। महरावी, यानी चन्द्राकार अक्षर २००० ई० पू० में ईंटों पर पाये जाते थे। उसके बाद नेबूचेडनेज्जर के शिला-लेख पर पाये जाते थे। उनका नमूना यह है—

अ ब ज द र म

न ह व

चीज़ो या विचारो के लिए पहले चित्र बनाते थे; जैसे उगते हुए फूल की तसवीर बनाकर ज़िन्दगी और इस तरह गोल चक्कर बनाकर वर्षा का अर्थ लेते थे। फिर एक ही शक्ल से कई तरह की बातें बताई जाती थीं; जैसे सूरज के चक्कर से केवल सूरज और दिन ही नहीं समझा जाता था, बल्कि रोशनी और चमक भी समझा जाता था। दोनों पैरो की शक्ल बनाने से चलना, टहलना और दौड़ना प्रकट होता था। मुँह की शक्ल में पानी की बूँद दिखाकर पानी पीने का अर्थ बतलाया जाता था। आँख की शक्ल बनाकर उसके नीचे आँसू की बूँद दिखाकर रोना समझा जाता था। नुकीली लिपि भिन्न-भिन्न जातियों ने अपनाई है। सबसे पहले प्रेसि-पोलिस के शिला-लेखों को ग्रोटफेड ने पढ़ा और समझा। उस वक्त यह पता चला कि वे आर्य सिद्धान्त पर थे। जिसको ईरानी लोग बोलते थे वह वास्तव में इण्डो-यूरोपियन कुटुम्ब की बोली थी। नुकीली लिपि बेहिस्टन के मकबरो पर तीन ज़बानो में पाई गई थी। पहली लिपि बिलकुल सादे रूप में थी। दूसरी और तीसरी में केवल बनावट का अन्तर था। एक की बाबत यह पता चला कि वह असीरिया और बेबीलोनिया से सम्बन्ध रखती थी, और दूसरी मेडिया के लोगों से। ऐसा पता चलता है कि इस प्रकार की लिखाई को शुरू तो तूरानियों ने किया, लेकिन ली सेमेटिक वालों से थी। शुरू में यह हिरो-ग्लिफिक थी, मगर उसमें नुकीली शक्ल नहीं थी बल्कि केवल

सीधी-सीधी लकीरों से बनती थी। जैसे यह
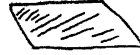
शक्ल बनाकर मकान का अर्थ लेते थे। इससे शहर समझते थे। यह और दूसरी प्रकार के चित्र ऐसे हैं जिनको देखने वाला समझ नहीं सकता, जब तक पहले बतलाया न जाय कि उनका मतलब क्या है। शायद इसका कारण यह होगा कि चीनियों ने इन चित्रो को पहाड़ की चट्टानों पर छेनी से बनाया होगा। सीधी-सादी लकीरें बनाने मे ज्यादा आसानी होती होगी। उस समय एक ही अक्षर से अर्थ और आवाज प्रकट की जाती थी। मिसाल के तौर पर यो समझ में आएगा—जैसे 'बी' का अर्थ है मक्खी और 'बि' उसकी आवाज होती है।

अक्कादियन बादशाह के लडके ड्यूगी ने नुकीली लिपि के कुछ शिलालेख छोडे हैं। असीरिया वालों ने मिट्टी पर खोदने की नकल बाबुल वालों से की थी। लेकिन उन्होंने भी पत्थर और 'पेपीरस' (पेड़ की छाल) पर लिखा है। उस समय पत्थर पर लिखने का दस्तूर बहुत ज़्यादा था और हर प्रकार का साहित्य उस पर मौजूद था।

अरबी लेखन-कला इस्लाम की उन्नति के साथ शुरू हुई। उस समय दो प्रकार की लिपि का उपयोग होता था—क्यूफिक या अन्सियल लिपि, और निस्की-क्यूफिक लिपि के शिलालेख ६३९ ई० तक जेरूसलम अर्थात् बैतुलमुकद्दस में निकले हैं। दमास्कस या दमिश्क में भी यूनानी और अरबी लेख तबरेज़ और दूसरी जगहो में पाए जाते हैं।

हिन्दुस्तान के शिलालेखों की संख्या और रूप बहुत ज्यादा हैं। वे पहाड़ो, खम्भो, इमारतों, खन्दकों और ताँबे

के पत्रों पर पाये गए हैं। सबसे पुराना और मशहूर शिला-लेख राजा पयादासी का है। २५० ई० पू० उसकी ठीक तिथि मानी गई है। सबसे पुराने शिलालेख सातवीं शताब्दी के हैं। उससे भी पुराने शिलालेख वे हैं जो नील नदी के किनारे आबू-सिम्बल नगर में मिस्री ढाँचे की टाँग पर खुदे हुए हैं। बहुत पुराने ज़माने में खोदने से पहले कूँची से शक्लें बनाते थे; जैसे—

A — Λ
L — ᒻ
P — Γ
Q — ϙ
G — ᘓ
H — h

नोट--भिन्न-भिन्न मुल्कों के शिलालेखों के नमूने नकशा संख्या १ में देखिए।

१४

कागज़

कागज़ के जन्म ने पत्थरों पर खोदकर लिखने की पुरानी रीति को बिलकुल मिटा दिया और बहुत शीघ्रता के साथ कागज़ पर लिखने का दस्तूर हो गया। कागज़ के आरम्भ की तिथि बहुत अँधेरे में है। रेशेदार चीज़ो को गूदे की सूरत में लाकर कागज बनाना चीन वालों का बहुत पुराना तरीका है। भिन्न-भिन्न इतिहास-लेखकों ने दूसरी शताब्दी ई० पू० तक इसकी खोज की है। मिस्र में ५००० ई० पू० में कागज़ का जन्म हो चुका था। उस समय पेपीरस (पेड़) की छाल से कागज़ बनाते थे। कलम उससे भी पहले की ईजाद है। परन्तु उस समय कलम से भी पत्थरों और दूसरी धातु की चीजो पर ही लिखते थे। लोहे, लकडी और जानवरो के सींगों के कलम बनाते थे। यूरोप में कागज़ की बनावट पहले जंगियों और हब्शियों ने हसपानिया में कायम की। अब यह व्यवसाय उत्तर की ओर बढ़ा तो वहाँ रुई की पैदावार न होने और विदेशी माल न आने के कारण दूसरी चीज़ों को कागज बनाने के काम में लाने लगे। इस प्रकार धीरे-धीरे चिथड़े, गुदड़े और रेशे काम में लाये गए। चौदहवी शताब्द के अन्त में कागज़

की बनावट आम तौर पर यूरोप में फैल गई। पेपीरस एक पेड़ का नाम है। पुराने ज़माने में मिस्र में इसकी खेती की जाती थी। वहाँ कई कामों में इसे लाया जाता था, मगर खास तौर पर लिखने के काम में आता था। कुछ लोगों का विचार है कि वास्तव में यह नुबिया से आया था, जहाँ वह पैदा होता है। यह पेड़ अबीसीनिया में भी होता है। इसके सिरे पर फुनगी में जो बारीक तिनकों का चँवर होता है, उससे शुरू में देवताओं पर चढ़ाने के लिए हार बनाते थे और जड़ की लकड़ी से बरतन बनाते थे। जलाने के काम में भी लाते थे। पेड़ के तने से नाव, पतवार, चटाइयाँ, कपड़े, रस्सियाँ और तख़्ते बनाते थे। गूदा खाने के काम में लाते थे—कच्चा भी और पक्का भी। उस पेड़ की शक्ल ऐसे होती थी—

पहले इसकी छाल उतारकर उसके लम्बे-लम्बे पतरे बनाते थे। फिर नील नदी के पानी में उनको भिगोते थे। बाद में उनको दबाकर धूप मेंसुखा लेते थे। खुरदरी जगह को हाथीदाँत या सीप से चिकना कर देते थे।

१५

प्राचीन पुस्तकालय

पहले पुस्तकालय के नाम से कोई स्थान निश्चित नहीं होता था। खास-खास और धार्मिक या राजनीतिक हालात लिखकर मन्दिरों मे, पादरियों और पुजारियों के घरों मे रख दिये जाते थे। लेखन-विद्या की कल्पना और जन्म होने से पहले गीत और घटनाएँ एक जाति से दूसरी जाति तक मौखिक रूप में पहुँचा करती थीं।

नीनेवेह की १८५० ई० की खुदाई में जमीन की तह से मिट्टी की ऐसी तखतियाँ निकली हैं, जिन पर नुकीले अक्षर लिखे हैं, जो इतने बारीक हैं कि बिना आतशी शीशे के पढ़े नहीं जा सकते। वास्तव में यह असर-बानी-पाल—जो यूनान का बादशाह था—के पुस्तकालय की तखतियाँ थीं। यह बादशाह असीरियन जाति के ज्ञान का सबसे बड़ा आश्रयदाता था। इस पुस्तकालय में दस हज़ार पुस्तकें थीं। इसका बहुत-सा हिस्सा लन्दन के पुस्तकालय में लाकर रखा गया है। मिस्र के पुराने पुस्तकालयों का हाल बहुत कम मालूम होता है। इतना मालूम है कि बहुत पुराने 'हिरोग्लिफिक' लेख २००० ई०पू० के हैं। अठारहवीं शताब्दी के एक बादशाह अमीनोफी के समय

से उसका सम्बन्ध बताते हैं। शायद वह १६०० ई० पू० का ज़माना था। सबसे अधिक पुराना पुस्तकालय चौदहवीं शताब्दी ई० पू० का है, जो बादशाह ओसीमण्ड्यास के नाम से सम्बन्धित है। इस पर जो शब्द लिखे हैं, उनको जब यूनानी अक्षरों में नकल किया गया तो यह हुआ--

Ƴ Ɣ Ӿ Ƙ ɛ

अंग्रेज़ी में इसको ऐसे पढ़ते हैं–LETPION (लैटपिअन)। अफ्रीका में फ़ातमियों के पुस्तकालय में एक लाख पुस्तकें थीं। सारी दुनिया में सबसे बड़ा और मशहूर पुस्तकालय लन्दन के अजायबघर में है। वहाँ पन्द्रह लाख से ज्यादा छपी हुई और पचास हज़ार से ज्यादा हाथ से लिखी हुई पुस्तकें मौजूद हैं और दूसरी शताब्दी तक की हैं।

१६

हीरोग्लीफ़ी

यूनानी और लातानी पुरानी मिस्री जबान के शब्दों को 'हीरोग्लिफिक' में लिखते थे। पुराने मिस्रियों की लिखने वाली बोली इथियोपियन बादशाहों के समय तक—यानी ७०० ई० पू० तक—एक प्रकार से रही। यद्यपि मिस्री बोली की बाबत यह साबित नहीं हो सका कि वह सामी बोली है, मगर उसमें पुराने तरीके के सामी तत्त्व मौजूद हैं। हाल की छान-बीन से यह पता चलता है कि दो बोलियाँ चालू थीं—एक सामी और दूसरी हामी—यानी सेमेटिक और हेमेटिक। इनका सीधा-सादा सम्बन्ध मिस्री भाषा से था।

मिस्र के साहित्य के तीन अंग हैं—(१) हीरोग्लिफिक, (२) हिरैटिक, और (३) डिमोटिक। हीरोग्लेफी की पूरी-पूरी शक्लें बनाने के लिए समय और दिमाग की आवश्यकता थी। पहली शताब्दी की रूमी लिखावट के नमूने और हीरोग्लेफी ज़बानों के नमूने चित्र सं० २ में देखिए। वास्तव में हीरोग्लेफी एक बढ़ई के काम का तरीका था, जिसको 'नक्काशी' कहते हैं। इस प्रकार की लिखावट का पढ़ना अधिक कठिन होता था, क्योंकि नक्काश खास तौर से इसका ध्यान रखता था कि

शक्लों और निशानों की सुन्दरता और सुडौलपन किसी प्रकार न जाने पाए। इसलिए उसमें व्याकरण के नियम प्रायः छूट जाते थे।

मिस्र की लिपि में दो प्रकार के निशान होते हैं—(१) हर निशान से किसी विचार का पता चलता है। (२) जिससे आवाज समझ में आती है। एक निशान केवल एक ही चीज़ को ज़ाहिर करता है, जैसे १ बनाकर दिन के अर्थ में प्रयोग करते थे और जब एक से अधिक चीजों को बताना होता था तो २ इस प्रकार लकीर के नीचे एक तारे की शक्ल बनाते थे, जिसका मतलब होता था कि रात है। शुरू में मिस्र वाले अक्षरों को इस प्रकार लिखते थे। (चित्र में सं० ३ देखिए) यह शक्ल बनाने से चलने का अर्थ होता था। पुस्तक के अन्त में दिये नक्शों में सं० ४ में ऐसे निशानों की सूची दी गई है जो किसी चीज से सम्बन्ध रखते हैं। और फिर, उनसे कोई मतलब निकलता है या उनसे कोई भावनाएँ मालूम होती हैं। मि० डि रफ ने इस सूची को बनाया है। पढ़ने वालों को यह दिलचस्प मालूम होगी। मिस्र वालों के मत और विचार की तो यह कुञ्जी है, और इसको देखने से मिस्री भाषा के प्रभाव का पता चलता है।

१

२

३

१७

वर्णमाला

वर्णमाला ऐसे निशान-विशेष हैं जो किसी जाति के लिखने और बोलने के काम आते हैं। अंग्रेजी वर्णमाला करीब-करीब लातानी वर्णमाला की तरह है। लातानियों ने अपनी वर्णमाला यूनानियों से ली है और यूनानियों ने फोनेसियन से ली थी। वर्णमाला की सबसे पहली स्थिति का कोई प्रमाण नहीं मिलता। साधारण प्रकार से यह विश्वास किया जाता है कि वर्णमाला सबसे पहले हीरोग्लिफिक थी। लिखने के तरीके को इस नाम से अपना लिया गया जिसको हिरैटिक कहते हैं। शक्लों को उन्होंने फोनेसियन से लिया था। जो प्राचीन युग से हम तक आते-आते धीरे-धीरे आवाज में बदल गई।

जमीन पर पहले ऐसे असभ्य लोग बसते थे, जिन्होंने कभी कोई शब्द बनाने की ओर विचार ही नहीं किया। पाँच प्रकार के लिखने के तरीके हैं—मिस्री, चीनी, मैक्जीकन, यूकिटन और दरमियानी अमरीकन। मगर ये सब तरीके पूर्ण नहीं थे और कोई भी तरीका पूर्ण नहीं था। नये विचारो के लिए नये-नये नामो की आवश्यकता होती थी; जैसे रूमियों ने पहले-पहल हाथी को बैल कहा, और लिखा भी

इसी अर्थ में। सबसे पहले आवाज की विद्या शुरू हुई। निशानों को आवाज़ से प्रकट करने के लिए काम में लाया गया, बिना इस विचार के, कि उसके निजी अर्थ क्या होते हैं; जैसे आँख की शक्ल बनाएँ, फिर एक आरे की, और फिर एक गाय की। इस तरह—

ये अंग्रेज़ी के शब्दों और आवाज़ के उदाहरण हैं। चीनी वर्णमाला में ज़्यादा संख्या में निशान मिलते हैं जो पहले चित्र थे; जैसे सूरज को बताना हुआ तो एक चक्कर बनाकर बीच में एक बिन्दु रख दिया। चाँद को बताना हुआ तो चाँद की शक्ल बना दी। पहाड़ के लिए इस तरह, वर्षा के लिए ऐसे, बच्चे के लिए यह और औरत के लिए यह शक्ल बनाते थे। इस प्रकार के निशानों को मिलाकर किसी काम का मतलब लेते थे; जैसे आँख और पानी के निशान बनाकर आँसू समझे जाते थे। कान और दरवाजे की शक्ल बनाकर सुनना मान लेते थे, जैसे यह । इसके अतिरिक्त जब यह आवश्यकता हुई कि ऊपर या नीचे कैसे बताया जाय तो एक लकीर खींचकर उस पर एक बिन्दु रख दिया और अर्थ माना गया 'ऊपर'; और इसका अर्थ हुआ 'नीचे'। संख्या जताना हुआ तो उतनी लकीरें खींच दीं। सीधी ओर को बताना हुआ

तो इस तरह । और उलटी ओर का तात्पर्य हुआ तो इस तरह !

का निशान बना दिया। इस प्रकार से सादे हीरोग्लेफी निशान और नक़्शे ऐसे थे, जिनसे केवल आँख ही से देखने वाली चीजों का अर्थ नहीं निकलता था, बल्कि विचार और काम का अर्थ भी निकलता था। मिस्र वाले सूरज से निकलती हुई किरणों से रोशनी और सफाई समझते थे, और चाँद से मुँह। एक हाथ में ढाल और दूसरे में किसी हमला करने वाले हथियार की तस्वीर बनाकर लड़ाई का अर्थ निकालते थे। दो पैरों की शक्ल बना-

कर 'हरकत' समझते थे, जैसे ∩ ∩। हाथ में लकडी लेने

से 'शक्ति' समझी जाती थी। कभी-कभी कई निशान केवल निसबत रखने के लिए बनाते थे; जैसे शहद की मक्खी से बादशाह, कागज़ के पुलिन्दे से विद्या, शुतुरमुर्ग के पैरों से न्याय, क्योंकि उसके पैर एक ही लम्बाई के होते हैं। ऐसे निशान बहुत प्राचीन युग में काम में लाये जाते थे।

यद्यपि मिस्रियों के लिए यह बात सराहनीय है कि उन्होंने सबसे पहले लिखने की कला का आविष्कार किया और इसके लिए दुनिया उनको धन्यवाद भी देती है। मगर फिर भी वे निशान साहित्य की माँग को हर तरह से पूर्ण नहीं कर सकते थे। क्योंकि अकेले निशान से भिन्न-भिन्न प्रकार का अर्थ निकलता था। यह दोष समय बीतने के साथ बढ़ता गया। मिस्री जबान पर धार्मिक असर भी था। बहुत-सी जातियो का विचार था कि लिखने की कला ईश्वर की सृष्टि है। सरडानापालस का कहना है कि नुकीली लिपि देवता नेबो ने सिखाई थी। संस्कृत भाषा के अक्षर देवनागरी कहलाते हैं। इसका

कारण है कि वह देवताओं के नगर की बोली थी। श्री लेनार-मेण्ट का कहना है कि मिस्र वालों का खयाल था कि वे स्वर्गीय अक्षर लिखते हैं। जिस जाति के दिल में ऐसे विचार हो वह अपने लिखने के तरीके को कभी नही बदलेगी।

फोयनेटिक वर्णमाला का पहला अक्षर, जो इबरानी भाषा का भी पहला अक्षर है, मूलतः बैल के सिर के आकार पर रचा गया था, और इन दोनो भाषाओं का दूसरा अक्षर मूलतः घोड़े के सिर के आकार से लिया गया है। इस तरह से फोयनेटिक वर्णमाला का आरम्भ मालूम होता है।

श्री लेनारमेण्ट ने इस तरीके को पॉच शाखाओं में बॉटा है—(१) सेमेटिक, (२) दरमियानी शाखा, जो यूनान, एशिया और इटली में चालू हुई। इसमें भिन्न-भिन्न हेलेनिक वर्ण शामिल हैं। (३) पश्चिमी शाखा, इसमें पुराने हसपानिया के रहने वालों के वर्ण शामिल थे। (४) उत्तरी शाखा उन लोगों से सम्बन्धित है जो स्कैण्डिनेविया के रहने वाले थे और जो एक खास युग में उत्तरी यूरोप में आबाद हो गए थे। मगर आये एशिया से थे। (५) इण्डो हेमेराइट स्टेम; इसमें नये तत्त्व थे। इनकी आवाज और अक्षर की रचना अलग थी। इसका आरम्भ पश्चिमी अरब में हुआ। वहॉ से वह एक ओर अफ्रीका को चली गई, जहॉ दूसरे अफ्रीकी और हब्शियो ने उसे अलग ढंग दे दिया। और, दूसरी ओर, यह आरियाना को चली गई। वहॉ जाकर एक विशेष रूप धारण कर लिया; और एक ओर हिन्दुस्तान की ओर भी मुँह किया। यहाँ की बहुत प्राचीन वर्णमाला मागधी से बहुत संख्या में अक्षरों को निकालकर उनको उसके मूल के रूप में काम लाया गया, जिसके

छः भाग होते हैं—(१) देवनागरी, (२) पालि, (३) द्रैडियत, (४) ट्रान्स-गेंगेटिक (५) समुद्री, और (६) तिब्बती।

करीब-करीब सारे यूरोप की भाषाएँ 'इण्डोयूरोपियन' हैं, या यों कहना चाहिए कि आर्य भाषाएँ हैं। सबसे पहले जब किसी जाति को वर्णमाला की आवश्यकता हुई होगी तो उन्होंने बहुत विचार के बाद अक्षर को बनाया होगा। कोई अक्षर जो इस प्रकार बना, वह ऐसा रहा होगा जो ज़रूरत के समय कभी मनुष्य की बुद्धि में न आया होगा। कोई ऐसी शक्लों की सूची चित्त में न आई होगी जिनसे सब आवाजें निकल सकें। इस विषय में श्री मेलेविली बेल ने बहुत सफाई से लिखा है। वह इस तरीके को 'दिखाई देने वाली बोली' कहते हैं। इसमें अक्षरों को टेढ़ी-मेढी रेखाओं से बताया गया है, जो ज़बान या ओंठ के हिलाने से बन जाती हैं। जैसे, कण्ठ से शब्द निकालने पर ज़बान के पीछे का हिस्सा उठ जाता है और उसकी शक्ल ऐसी बनती है । दाँत से शब्द निकालते समय ज़बान की नोक उठ जाती है जिसकी शक्ल ऐसी होती है । ओंठ से निकलने वाले शब्द की हालत में ओंठ बन्द हो जाता है और उसकी शक्ल ऐसी बन जाती है ।

फोनेसियन वर्ण २८ हैं जो इबरानी भाषा में ऐसे कहलाते हैं—(देखे चित्र सं० ५)।

सबसे पहले यूनानी भाषा सीधी ओर से उलटे हाथ की ओर लिखी जाती थी, जैसे फोनेटिक लिखी जाती है। लिखने

का ज्यादा आसान तरीका उलटे हाथ की ओर से सीधे हाथ की ओर बहुत जल्दी फैल गया था। केवल लातीनी भाषा ही ऐसी है जो शुरू से ही उल्टे हाथ की ओर से सीधे की ओर लिखी जाती रही।

जब उच्चारण की कोई रीति न थी उस समय ऐसे (ѱ ⊕ ○) निशानों के लिए रोमन भाषा में कोई मुख्य आवाज न थी। और इसलिए ये निशान उनकी वर्णमाला में कभी शामिल नहीं हुए। गिनने के काम में ज़रूर लाये जाते थे। इन शक्लों की दशा बहुत-कुछ बदल गई है, जैसे यह (ѱ) निशान '५०' के लिए था। मगर धीरे-धीरे यह (V) हो गया। फिर यह शक्ल (⊥) बन गई और अन्त में यह (L) हो गया। इस (⊕) निशान से तात्पर्य होता था '१०'। लेकिन ऐसा निशान बनाने में कठिनाई होने लगी। इसलिए उसका चक्कर हटाकर यह (×) निशान रहने दिया। यह ⦶ निशान '१०००' को बताता था। लेकिन बाद में उसको तोड़कर इस तरह (CІↃ) लिखने लगे। बहुत मुमकिन है कि जब यह ⦶ 'हजार' को बताता था तो उसका आधा यह D '५००' का प्रतीक होना चाहिए। जिस तरह X का आधा V को बताता है। अगर हम फोनेसियन बोली की वर्णमाला के मूल की ओर विचार करें तो यह मानना पड़ेगा कि जो निशान और इशारे उस समय

बनाये गए थे, उनको किसी सारभूत तत्त्व पर नहीं, बल्कि साधारण प्रकार से ही लगाया गया था, और समय के साथ उनकी रचना होती रही।

प्राचीन युग के अक्षर पत्थरों, समाधियों, अँगूठियों और सिक्कों पर स्कैण्डिनेविया में ज्यादा पाए जाते हैं। यह इंगलिस्तान, नार्थम्बिया, मरसिया और पूर्वी आंग्लिया मे भी दिखाई देते हैं।

भिन्न-भिन्न रूप से जैसे-जैसे वर्णमाला का प्रयोग होता गया, उसका कुछ नमूना चित्र सं० ६ में देखें।

१८

गणना (गिनती)

संख्या के निशानों का प्रयोग लेखन-कला से केवल पुराना ही नहीं है, बल्कि बोली की कल्पना से भी पहले का है। हम दस-दस करके जो गणना करते हैं उसका कारण यह है कि हमारे पुरखे अँगुलियों पर गणना किया करते थे। पहले पूर्ण अँगुलियों पर और उससे अधिक गिनती की आवश्यकता होती थी तो अँगुलियो के पोरों पर गणना करते थे। उससे अधिक की अवस्था में पैरों की अँगुलियों और पोरों को भी गणना के काम में लाते थे। इस रीति को अँगुलियों की गिनती कहना चाहिए। प्राचीन काल मे इसी स्वाभाविक रीति से सारी बातो की गणना होती थी। किसी संख्या के लिए अँगुलियो को काम में लाते थे। मगर जब किसी को पूर्ण रीति से जीवित रखने के लिए अँगुलियो से काम न चलता था, तो उसके लिए दूसरे तरीके को काम में लाते थे; जैसे रूम वाले मिनर्वा के मन्दिर में हर साल की गिनती करने के लिए दीवारों में कीलें गाढ़ देते थे। गणना करने की सबसे आसान रीति बाबुल के शिलालेखों में पाई जाती है। वहाँ सारी-की-सारी

संख्याएँ—१ से ९९ तक—नुकीले चित्रों में लिखी जाती थी; जैसे यह १= । , १०= < । चित्र सं० ७ से पता चलेगा कि भिन्न-भिन्न जातियाँ संख्याओं के लिए कैसी रेखाओं का प्रयोग करती थीं।

१

सामी बोली

सेमेटिक' बोली एशियायी और अफ्रीकी
त्व करती है। इनमें से कुछ मर चुकी हैं,
ईरानी, फोनेसियन, आरामिक, असी-
क। ऐसा सोचा जाता है कि बहुत-सी
ाएँ बोलती थीं, नूह के बेटे साम की
ारी भाषाएँ जिस सामी खजाने से निकली
ुका है। उसको हम भाषाओं की माँ भी

२

संस्कृत

हिन्दुस्तान की सबसे प्राचीन भाषा संस्कृत है। शब्द संस्कृत एक क्रिया 'कर' से निकला है, जिसका अर्थ होता है 'पूर्ण रीति से बनी हुई, या सम्पूर्ण, या शुद्ध की हुई।' हिन्दुस्तानी भाषाओं की वर्णमाला की कल्पना और जन्म की तिथि अब तक ठीक तौर पर मालूम नहीं हुई। सबसे पुराने लिपि के नमूने, जो अब तक मालूम हो सके हैं, वे पत्थर पर लिखे हुए पाँच लेख हैं। ये २५३ ई० पू० के लिखे हुए और पालि भाषा में हैं। राजा अशोक ने ये धार्मिक शिक्षाएँ उसी भाषा में प्रचारित की थीं। वे उत्तरी हिन्दुस्तान, पेशावर, उत्तर-पश्चिमी सरहद, गुजरात, कटक और पूर्वी किनारों तक फैली हुई थीं। इस प्रकार के शिलालेख पश्चिमी हिस्से में अधिक पाए जाते हैं। जो शिलालेख कपूरदागढ़ी या 'शहबाज़गढ़ी' कहलाते हैं दूसरी प्रकार के होते हैं। इनकी लिखावट दाहिनी ओर से बाईं ओर को पढ़ी जाती है। यह लिपि साधारण तौर से आर्यपालि वर्णमाला कहलाती है। आरियाना के यूनानी और इण्डो-स्कैथियन बादशाहों के युग में सिक्कों पर अक्षर लिखे होते थे, और ये बाईं ओर से दाईं ओर को पढ़े जाते थे।

थे। इनको भारतीय पालि वर्णमाला के अक्षर कहते थे। पालि भाषा का नमूना नक्शा सं० ८ में देखें। यह दो हजार साल से भी अधिक प्राचीन है।

संस्कृत बोली बहुत पुरानी है। बनावट में बहुत सुन्दर है और यूनानी भाषा से अधिक पूर्ण और लातीनी से कहीं ज़्यादा फैलाव में है। यह दूसरी सारी भाषाओं से अधिक शुद्ध है। आर्य कुटुम्ब की भाषा दस भागों में बँटी है। इनमें से तीन एशिया और बाकी यूरोप से सम्बन्ध रखती हैं। (१) संस्कृत, प्राकृत और पालि। (२) ईरानी या फारसी कुटुम्ब। प्राचीन फारसी का कुछ तलछट हम तक नुकीले अक्षरों वाले शिला-लेखों के रूप में पहुँचा है। इसीको जैण्ड प्राचीन बैक्टे-रियन लिपि भी कहते हैं। यही जोरास्ट्रियों की पवित्र पुस्तकों की भाषा भी है। इसके मुख्य-मुख्य मानने वाले फारसी, अफ-गानी और कुरदिश हैं। (३) आरमेनियन। (४) यूनानी। (५) अल्बानियन। (६) इटैलिक। (७) सेल्टिक। (८) जरमन। (९) बाल्टिक। (१०) सिलावैनिक। इन दस भाषाओं के कुटुम्ब के मेल-जोल से यह पता चलता है कि ये सब एक ही प्राचीन माता—आर्य भाषा—की सन्तान हैं; और अन्त में बँट जाने से बिखर गई हैं। भाषाओं का यह विवरण नक्शा सं० ९ की सहायता से अच्छी तरह समझ में आयगा।

३

चीन

दुनिया की बहुत प्राचीन सभ्यता का स्थान, जिसको हम चीन कहते हैं, पश्चिमी लोगों की आँखों में सदा खटकता रहा। सबसे पहले उसका नाम सिन था, फिर चीन हुआ और अब चाइना। ऐसा विचार किया जाता है कि चीन का नाम 'थसिन' से निकला है। प्राचीन संस्कृत के गुणियों ने जो चीनियों का हाल 'मनुस्मृति' और 'महाभारत' में लिखा है वह थसिन वंश से भी पहले का है। चीन का इतिहास बहुत पुराना है। उसकी असलियत का हाल हमको इतना ही मालूम है कि ये लोग पहले शा-से के जंगलों में इधर-से-उधर मारे-मारे आवारा फिरा करते थे। इनके पास न रहने को मकान थे, न पहनने को कपड़े। जलाने को आग भी नहीं थी। कीड़ों और जानवरों को पकड़कर उनका मांस खाते थे। जाँच से पता चलता है कि ये लोग बहुत बुद्धिमान नहीं थे। दूसरे देशों से घूमते-घूमते इस ओर आ निकले थे। कुछ लोगों का विचार है कि ये लोग कैस्पियन सागर की ओर से आये थे। जो कुछ भी हो, यह मानी हुई बात है कि ज्यों-ज्यों वे इस

ओर आगे बढ़ते आये, उन्होंने शा-से की उपजाऊ ज़मीन में छोटी-छोटी नई बस्तियाँ बना लीं। और, यद्यपि वे घूमते फिरते थे, मगर उनमें एक समूह में रहने और काम करने की आदत थी। धीरे-धीरे ये लोग झोंपड़ी से मकान बनाने लगे। कहा जाता है कि जब चंगेज़खाँ ने चीन पर हमला करते समय एक शहर को नष्ट किया, तो उसके सिपाहियों ने मकानों की दीवारों को जलाकर गिराना शुरू किया। ऐसा करने में मकानों के छप्पर खम्भो पर टँगे-के-टँगे रह गए और खेमों की सूरत में बदल गए। इनको सिपाही अपने रहने और घोड़ों के बाँधने के काम में लाने लगे। कुछ लोगों का कहना है कि खेमों की बनावट इस प्रकार के नुकीले झोंपड़ों को देखकर पैदा की गई थी। चीनी भाषा की वर्णमाला भी इसी दशा के नुकीले झोंपड़ों से मिलती-जुलती है। उसका हीरोग्लिफिक से विशेष सम्बन्ध है, जैसे यह शब्द है । इसका अर्थ चीनी बोली में 'सच' होता है।

चीन के ये आवारा फिरने वाले लोग चीन की ज़मीन पर आते ही खेती-बाड़ी करने लगे। कपड़ा पहनने के लिए सन की खेती करते थे, और सन का कपड़ा पहनते थे। धीरे-धीरे उनका ध्यान रेशम के कीड़ों की ओर गया और अधिक संख्या में शहतूत के पेड़ लगाये गए। जगह-जगह मेले-ठेले लगने लगे और इस प्रकार व्यापार बढ़ने लगा। उस समय वे ज्योतिष को भी जानने लगे थे। और ऐसा विचार किया जाता है कि हीरोग्लिफिक में भी मन लगाने लगे थे। बहुत प्राचीन समय की बात है कि एक मनुष्य 'इयिन' ने सन् १७१० ई० पू० में

बादशाह के सामने एक प्रार्थना-पत्र दिया था। मगर उससे पहले, जब कि लिखने की विद्या का जन्म न हुआ था, अक्षर बनाने का विचार कछुए की पीठ की रेखा देखकर पैदा हुआ था। आग का प्रयोग भी उनको अचानक मालूम हुआ। उन्होंने एक बार सूखी लकड़ी के दो टुकड़ों की रगड़ से चिनगारी निकलती देखी। यह युग उनके सरदार 'सुय-जिन-शे' का था। इस नाम का अर्थ अग्नि है—यानी आग पैदा करने वाला। इसने घटनाओं की याद जीवित रखने की यह रीति निकाली थी कि पेड़ों की छाल से रस्सी बनाकर, उसमें फन्दे और गाँठें लगाई जाती थीं; और हर छोटी-बड़ी भिन्न-भिन्न प्रकार की गाँठ और फन्दे से कोई विशेष बात, काम और समय माना जाता था। वही रीति अब तक किसी-किसी के जन्म-दिन पर नाड़े में गाँठ लगाने की प्रथा के रूप में चली आती है।

छोटे दरजे की भाषाओं में, जैसे तिब्बती, कोचिन, चीनी, बरमी और कोरिया की बोलियों में चीनी बोली का विशेष प्रभाव है। इस भाषा का हर अक्षर मूल है और हर मूल अक्षर है। उसमें कड़ापन नहीं है, और हज़ारों रेखाएँ होती हैं। चीनी भाषा के बनाने वाले के विषय में एक इतिहास से तो यह पता चलता है कि पुह-हे ने ३२०० ई० पू० में इस वर्णमाला की कल्पना की थी। उसीने शादी-विवाह की रस्म और गाँठदार रस्सी या कपड़े की कल्पना की थी। दूसरा लेखा यह कहता है कि कोई सांगके नामक एक विलक्षण बुद्धि का मनुष्य था। एक दिन वह मुकाम यांग-वू में अपने घर के चारों ओर घूम रहा था। उसने एक कछुवा देखा और उसकी पीठ की

सुन्दर रेखाओं पर गौर किया। वह इस कछुवे को अपने घर ले आया। फिर आकाश के तारों और दूसरों चीजों पर भी विचार किया। चिड़ियों की सूरत, नदियों, पहाड़ों और पेड़ों की ओर भी ध्यान लगाता रहा। ये हालात थे जिन पर विचार करने के पश्चात् अक्षरों की कल्पना हुई। यह मानना पड़ेगा कि भाँति-भाँति की चीज़ों को देखकर अक्षरों को बनाने मे सहायता ली गई है। जैसे, जब लिखने वाले को पहाड़ बताने की आवश्यकता होती थी तो वह यह शक्ल बनाता था। आँख के लिए यह और जो सूरज के लिए यह बनाते थे उसकी आवाज़ 'जिह' होती थी। सूरज निकलने के लिए इस तरह बनाते थे। इसकी आवाज़ 'तान' होती थी। ऊपर के लिए इस तरह बनाते थे और इसकी आवाज़ 'शान्ग' होती थी। नीचे के लिए यह बनाते थे। इसकी आवाज़ 'ही' होती थी। इस प्रकार के ७०० निशान हैं। दाहिनी ओर के लिए यह और बाईं ओर के लिए यह बनाते थे। इस प्रकार के ३७२ निशान हैं। इसी प्रकार एक के बाद दूसरे निशान बनते चले गए। एक बहुत बड़ा चीनी इतिहास लिखने वाला कहता है कि अक्षर कभी बाँझ नहीं होता। जब एक अक्षर कोई रूप धारण कर लेता है तो उसका बच्चा होना ज़रूरी है; और

उसके बाद उसका नाती भी होता है। इस प्रकार वह भिन्न-भिन्न सूरतें बनाता हुआ चला जाता है। चीनी वर्णों की संख्या सबसे ज्यादा है—यानी ८०,०००। चीनी वर्णमाला नक्शा सं० १० में देखें। इस बोली का बड़ा हिस्सा हीरोग्लिफिक है। इसमें दृष्टि-विषय की चीजें अधिक पाई जाती हैं; जैसे सूरज, चाँद, दरिया, पहाड़, आग, पानी, ज़मीन, लकड़ी और पत्थर। मनुष्य के शरीर के मुख्य-मुख्य अंग; जैसे सिर, दिल, हाथ, पैर, आँखें, कान इत्यादि। मकान के मुख्य-मुख्य हिस्से; जैसे छत, दरवाज़ा इत्यादि। पालतू जानवर; जैसे भेड़, गाय, घोड़ा, कुत्ता इत्यादि। समाज के मुख्य-मुख्य नाते; जैसे माँ, बाप, बेटा, बेटी। विशेषणों के नाम; जैसे बड़ा, छोटा, सीधा, टेढ़ा, ऊँचा, नीचा, लम्बा, चौड़ा इत्यादि। कामों के नाम; जैसे देखना, बोलना, चलना और दौड़ना। चीन में छापने की कला छठी शताब्दी में शुरू हुई। उसके ९०० साल बाद यूरोप में फैली। चीन के एक अच्छे इतिहासकार का कहना है कि सन् ५९३ ई० में शाह वान्ती ने यह ढिंढोरा पिटवाया था कि जितनी पुस्तकें जहाँ कहीं हों, जमा की जायँ और उनके लेख लकड़ी पर खोदकर और छापकर प्रकाशित किये जायँ।

४

मिस्र

हीरोग्लेफी बोली में मिस्र को 'केम' कहते हैं। यही दैमू-तीकी में 'केमी' हो जाता है। इसका अर्थ होता है, 'काली ज़मीन'। मिस्र की उपजाऊ ज़मीन काली होती है। ईरानी बोली में मिस्र को 'मिजरैन' कहते हैं। 'मैज़र' को अरबों ने मिस्र के नाम से पुकारा। पहले इसीको अलकाहरा भी कहते थे। मिस्र के पिरामिडों के बनने से ईरानी हमले के जमाने तक जो दो और तीन हजार साल के बीच का युग हुआ है, मिस्र की आबादी और उपजाऊ ज़मीन इस समय की अपेक्षा बहुत दूर तक फैली हुई थी। उस समय से इस समय तक की जन-संख्या में कोई विलक्षण बढ़ती नहीं मालूम होती। इसका कारण शाह फिरऔन की लड़ाई और दंगा भी है। इसके अलावा असीरियाइयों और फारसियों के अधिक दिनों तक चलने और नष्ट करने वाले संग्रामों ने भी जन-संख्या को अधिक हानि पहुँचाई। प्राचीन युग में भूमि के मालिक पुजारी, राजा और फौजी लोग होते थे। शिला-लेखों और समाधियों के लेखों से भी यही पता चलता है। यद्यपि देश में उस समय कोई जाति-

पाँति की कैद न थी, फिर भी ऊँची जाति के लोग पुजारी और फ़ौजी अफ़सर होते थे और साधारण तौर से बेटा अपने बाप के उद्यम को सँभालता था। 'बाइबल' में लिखा है कि अकाल के जमाने में जोसेफ ने मिस्र की सारी भूमि मोल ले ली थी। उसने किसानों को बोने के लिए बीज भी दिया था। इस व्यापार में उपज का पाँचवाँ भाग राजा के लिए देना निश्चित हुआ था।

शिला-लेखों और 'ममीज'—यानी मसाले से सुरक्षित मृतक शरीर—से हमको प्राचीन मिस्र-निवासियों के गुणों का पता चलता है। लोग ऐसा भी कहते हैं कि 'मिस्री' जाति हब्शियों से ज्यादा सम्बन्ध रखती है। मगर बहुत छान-बीन करने पर अब यह साबित हो गया है कि ये लोग काकेशिया से सम्बन्ध रखते हैं। मिस्र के प्राचीन इतिहास से पता चलता है कि ५००० ई० पू० से अधिक दिन हुए जब मिस्र की पहली हुकूमत शुरू हुई थी। इस प्रकार यह कहना अनुचित न होगा कि उस समय जो लिखने का ढंग था, वही पहला था। मिस्र-निवासियों की पहली बोली 'मिस्री' थी, और जब वे ईसाई हो गए थे, तो उनकी बोली 'कॉप्टिक' कहलाने लगी। पिरामिडों के इतिहास से भी मिस्र की विद्या का बहुत-कुछ पता चलता है। कुछ लोगों का विचार है कि सेनोफिरो पहला बादशाह था, जिसके नाम की समाधि बनी थी। सबसे अधिक मशहूर पिरामिड बनाने वाले खफ्रा-मेनकौरा और खुफू थे; और ये पिरामिड इन लोगों की बनाई हुई शाही समाधियाँ हैं।

मिस्र वालों का खयाल था कि मृतक शरीर को 'मोमयाई' प्रकार से सुरक्षित रखने से मृत आत्मा को सदा के लिए मुक्ति

मिल जाती है। वे यह समझते थे कि जीवित मनुष्य में शरीर, आत्मा और बुद्धि होती है। जब मनुष्य मर जाता है तो उसके मरने और आत्मा के जीवन के बीच में तीन हजार से दस हजार वर्ष का जमाना है। इस अवधि में बुद्धि चमकदार आकाश में भटकती रहती है और आत्मा एक पवित्र स्थान में जीवित रहता है। जीवात्मा के फिर इस शरीर में लौटने के समय तक शरीर को सड़ने-गलने से बचाने के लिए साफ और पवित्र रखने की आवश्यकता होती है। इस विचार के अनुसार मृत शरीर को रखने की तदबीर 'मोमयाई' प्रकार से की जाती थी। पिरामिडों के गहरे-गहरे गढ़े और तहखाने इसी मतलब से बनाये जाते थे। पहले मृतक शरीर को साफ कर लेते थे, जिसमें पन्द्रह-सोलह दिन लगते थे। उसके बाद शरीर पर नमक मलते थे, और यह काम उन्नीस-बीस दिन तक चलता रहता था। तब तीसरा काम यह होता था कि मसाले शरीर पर लगाते थे और कपड़े की पट्टियाँ बाँधते थे। इसमें चौंतीस-पैंतीस दिन लगते थे। इस प्रकार यह सारा काम सत्तर-बहत्तर दिन में पूरा होता था। उसके बाद कुछ मन्त्र पढ़े जाते थे। इस प्रकार के हालात पेपीरस (पेड़ की छाल) पर लिखे हुए बड़े-बड़े अजायबघरों में पाये जाते हैं। इन स्थानों में अधिक संख्या में 'मोमयाई' बनाने वाले रहते थे। उनको यूनानी लोग 'मेमनोनिया' कहते थे। हिसाब लगाने से पता चलता है कि पाँच सौ से आठ सौ तक लाशें 'मोमयाई' बनाने वालों के पास, मोमयाई बनाने के लिए हरदम पड़ी रहती थीं। ऊपर वाले कपड़े पर मृतक का नाम और उम्र, और जिस बादशाह के राज्य में वह मरा था, उसका नाम और युग लिख देते

थे। लिखने की स्याही चाँदी के तेजाब की होती थी और पट्टियाँ मलमल की। ये पट्टियाँ अधिक संख्या में बाँधी जाती थीं। हर अंग को बाँधते थे और फिर सारे शरीर को बहुत सी तहों से लपेटते थे। जोड़ों वाले अंगों में लकड़ी की पटरियाँ लगा देते थे। ७०० से १२५० गज तक की तीन-चार इञ्च चौड़ी, कपड़े की पट्टियाँ 'मोमयाई' में पाई गई हैं। डॉ० बर्च का कथन है कि ३८०० ई० पू० या ४००० ई० पू० में मोमयाई बनाना शुरू हुआ था, और ७०० ई० में बिलकुल बन्द हो गया।

५

इबरानी

इबरानी शब्द 'हेब्रो' का अनुवाद है। 'इब्राया' 'अरामैक' में एक शब्द था। यह उन लोगों के लिए प्रयुक्त होता था, जो बेनीइजरैल कहलाते थे। यह विचार किया जाता है कि पहले इबरानी फुरात नदी के दूसरे किनारे पर रहने वाले उन लोगों को कहा जाता था जो अब्राहम की पीढ़ी में से थे। 'अबर' एक कौम थी, जो कुछ समय तक असीरिया के साथ-साथ रही। अबर का अर्थ है, एक नदी का परला किनारा। और उसके मूल का अर्थ है, पार करना। यह भी समझा गया है कि कनआन के पहले रहने वालों ने नये आने वाले लोगो का नाम 'हेब्रू' रखा था।

इबरानी बोली की नींव अँधेरे में है। यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी बनावट 'सिमेटिक' भाषा से है या नहीं। यहूदियों का राज्य नष्ट होने से इबरानी बोली भी नष्ट हो गई। मगर फिर भी नेहमिया के युग में—पाँचवी शताब्दी ई० पू० में—इबरानी बोली जेरुसलम की बोली थी। पुरानी इबरानी भाषा का नमूना नक्शा सं० ११ में देखें।

वास्तव में असीरिया और इजिप्ट के बीच के स्थानों में यह बोली सारी 'सिमेटिक' जाति की सम्पत्ति थी। ऐसा मालूम होता है कि इबरानी ज़बान की सबसे पुरानी पैदावार बरबती गीत और कानून थे, जो बिना लिखे हुए दस्तावेजों के एक से दूसरे तक ज़बानी ही पहुँचते रहते थे। इस प्रकार के कुछ बरबती गाने राजा सोलोमन के राज्य से भी पहले के हैं, मगर उनकी ठीक तिथि का पता नहीं है।

नकशा न १

नोकदार शिलालेख

Podona

Olympia

नक्शा न ३
a
b
f
h
i
k
m
n
p
r
s
t
u
x
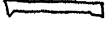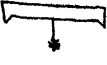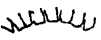
नक्शा न० ४
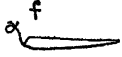
निशान चित्र	नाम चित्र	अर्थ
	छत	आकाश, उठाना, बडाई
	छत के नीचे तारा	रात, अन्धकार
	लहरे	पानी, नदी, धोना
	धूपदान	आग, गर्मी
	आँख	देखना, जागना
	रोती हुई आँख	रंज, दु ख
	नाक	सूघना, साँस लेना
	दाँत	खाना, बोलना, कडी चीज
	पैर	चलना
	पैर	वापस होना
	अडा	नारी
	सीढी	चढना
	चाकू, छुरी	काटना, कत्ल करना
	रोटी	धन

नक्शा नं० ५

अलिफ

बेठ

गीमान

दाल

हे

वाव

चेत

खाफ

लमाद

मीम

नून

समाद

शीन

ताउ

नकशा नं० ६

अक्षरों के इबरानी नाम	हीरातीकी	प्राचीन फीनकी	मुवाबीती	प्राचीन इबरानी
अलिफ				
बेट				
गीमाल				
दलिथ				
हे				
वाव				
ज़ैन				
खेथ				
टेथ				
योध				
काफ				
लमेध				
मीम				
नून				
समेख				
ऐन				
पे				
साधे				
शीन				

नकशा नं 6

	देवनागरी दसवीं शताब्दी	हीरोगलीफी	हीरातीकी	फैनकी	पालमायरा तदमीरी	शामी
1	९	I	I, 2	I	)	I
2	२	II	५, ५	II	II	r
3	३	II I	५५, ५५	III	III	rI
4	४	IIII	५५	\III	IIII	rr
5	५	III II	ɔ	II III	>y	7
6		III III	५	III III	Iy	I>
7	७	III IIII	३	\III III	IIy	r>
8	८	IIIIIII	०	II III III	IIIy	r>
9	९	III III III	२	III III III	IIIIy	rr>
10	०	∩	λ ∧ b	⇁	⇁	7
11		I∩	I λ	I ⇁	I ⇁	7
19		III III III ∩	२ ⊤	III III III ⇁	IIII y ⇁	rr77
20		∩∩	ऱ	⇉ z, 3, 0	३	o
21		I ∩∩	\ ऱ	⇉	I ३	Io
30		∩∩∩	५	⇁ H	⇁ 3	7o
40		∩∩∩∩	⊥	H H	33	o o
50		∩∩∩∩∩	३	H H ⇁	⇁ 33	7o o
60		∩∩∩ ∩∩∩	⊥ ५	H H H	333	o o o
70		∩∩∩∩∩∩∩	३	⇁ H H H	⇁ 333	7o o o
80		∩∩∩∩∩∩∩∩	⊥⊥ ५	H H H H	3333	o o o o
90		∩∩∩∩∩∩∩∩∩				
100		९	ς	P I, I2, N	⇁ I	ZI

नक्शा नं ८

अ	–	ਮ
इ	–	
उ	–	L
ए	–	ɩ
ओ	–	ਮ
क	–	+
ख	–	ʔ
ग	–	ʌ
घ	–	ω
ङ	–	[
च	–	d
छ	–	ф
ज	–	ɛ
झ	–	r
ञ	–	h
ट	–	(
ठ	–	o
ड	–	ϛ
ढ	–	ɗ
ण	–	I
त	–	⅄
थ	–	O
द	–	ϸ
ध	–	D
न	–	⊥
प	–	ı
फ	–	б
ब	–	□
भ	–	ძ
म	–	४
य	–	⅄
र	–	|
ल	–	ϑ

निम्न लिखित जातियाँ एक ही वश की सन्तान है। उनकी भाषाओ मे थोडे-बहुत परिवर्तन से समानता पाई जाती है।

हिन्दुस्तानी	अँग्रेज़ी	सस्कृत	यूनानी	लातीनी	प्राचीन ईरानी
बाप	फादर	पितृ	पातर	पातर	पतृ
माँ	मदर	मातृ	मातर	मातर	मतर
भाई	ब्रदर	भ्रातृ	फ्रातर	फ्रातर	ब्रातर
बेटी	डॉटर	दुहितृ	थगातर	–	दगदर
बहन	सिस्टर	स्वसृ	–	सोरर	–

पुस्तक-सूची

इस पुस्तक की तैयारी मे जिन पुस्तको से सहायता ली गई है
उनमे से मुख्य निम्नलिखित है

१ एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका

२ मुकालमात साइन्स

३ आरयाइ जबाने

४ जबान व कलम

५ गरायबुल जमल

६ जवाबित अजीम आदि